चन्दामामा
मार्च १९७५
1
Re

Photo by: AZMAT A. SYED

चन्दामामा

संस्थापक : नागिरेड्डी

संचालक : 'चक्रपाणी'

इस महीने की बेताल कथा "जीवित पिशाच" है।

साधारणत: पिशाचों को हम अत्यंत भयंकर समझते हैं, मगर "जीवित पिशाचों" को हम सब अक्सर प्रत्यक्ष देखा करते हैं। अधिकार के आश्रय में रहनेवाले इन पिशाचों को देख लोग पहचान नहीं पाते हैं, बल्कि उनका आदर करते हैं। ऐसी हालत में सच्चे पिशाचों की मदद से जीवित पिशाचों को प्रकट करना एक सुंदर कल्पना है।

वर्ष : २७ मार्च १९७५ अंक : ९

मित्र-भेद

[२०]

गबरैया, कठफोडवा तथा भौंरा मिलकर मेंढक को देखने गये। मेंढक ने सारी बातें सुनकर कहा–"हम जैसे बड़ों ने संकल्प किया तो इस हाथी जैसे परम मूर्ख का अंत करना कौन बड़ा काम है? हे भौंरे! तुम झंकार करते हुए जाकर हाथी की आँखों के सामने उड़ो और उसको काटने का प्रयत्न करो। हाथी डरकर आँखें मूंद लेगा। तब कटफोडवा उसकी एक आँख फोड़ देगा। हाथी घबराकर दूसरी आँख भी बंद करके दौड़ने लग जाएगा। तब कटफोडवा उसका पीछा करके उसकी दूसरी आँख भी फोड़ देगा। तब हाथी पानी के तड़ाग में जाने के लिए इधर-उधर दौड़ेगा। इस पर मैं एक गहरी खाई के किनारे बैठकर 'बक-बक' करूँगा। मेरी आवाज वाली दिशा की ओर वह यह सोचकर दौड़ पड़ेगा कि उधर तड़ाग है और खाई में गिरकर मर जाएगा।"

मेंढ़क के कहे अनुसार करके भौंरे, कटफोडवा ने हाथी को खाई में गिराकर मार डाला।

अपनी पत्नी के मुंह से 'गबरैया और हाथी' की कहानी सुनकर टिटिहरी ने बड़ी देर तक सोचा, तब यों कहा–"अच्छी बात है! मैं उपने सभी मित्रों की बैठक बुलाऊँगा, सब मिलकर समुद्र को सुखा देंगे।"

उसने सभी पक्षियों को बुलवाकर समझाया कि किस प्रकार समुद्र ने उसके अण्डों के साथ अन्याय किया है। सभी

पक्षियों ने इस बात का प्रयत्न किया कि अपनी अपनी चोंच में समुद्र के जल को लेकर समुद्र का जल सुखा दे। इस प्रयत्न के बावजूद जब कोई फ़ायदा न रहा, तब सब ने समुद्र को अपने पंखों से मारा। इससे भी जब कोई लाभ न रहा, तब मिट्टी के ढेले लाकर उसको भरने का प्रयत्न करने लगे।

तिस पर भी कोई फल न रहा, तब एक विवेकशील पक्षी ने कहा–"सुनो, हम लोग समुद्र पर विजय प्राप्त नहीं कर पायेंगे। बरगद के नीचे एक बूढ़ी बतख है। वह हमें उचित सलाह देगी। एक बार उसने अपनी सलाह के द्वारा बतखों की एक झुंड को बचाया; इसलिए हम उसकी सलाह लेंगे। चलिए, हम सब उसके पास चलें।"

"वह कैसी कहानी है?" अन्य पक्षियों ने पूछा। तब विवेकशील पक्षी ने यों कहा :

बूढ़ी बतख़ की कहानी

एक जंगल में एक महा वृक्ष था। उसके अनेक डालें थीं। उस पेड़ के मूल में एक बेल लग हुई और दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई।

एक बूढ़ी बतख ने मादा बतखों से कहा–"यह बेल पेड़ पर फैलती जाएगी तो उसकी मदद से हमारे दुश्मन पेड़ पर चढ़ पायेंगे। इसलिए हम अभी इस बेल को तोड़ डालेंगे। वरना हमें खतरे का सामना करना होगा।"

मादा बतखों ने हँसकर कहा—"यह बेल हमारी क्या हानि कर सकती है?"

बेल पेड़ पर फैलती गई। एक दिन एक बहेलिया इस बेल की मदद से पेड़ पर चढ़ा, जब सभी बतखे खाने की खोज में गई हुई थीं, तब उसने जाल बिछाया। वापस लौटते ही सारी बतखें जालों में फँस गईं। सबने बचने की कोशिश कीं, पर उनकी सारी कोशिशें बेकार गईं।

"मेरी बात न सुनने से ही तुम सब इस आफ़त में फँस गई हो!" बूढ़ी बतख ने कहा।

"यह बात तो सच है। मगर अब इससे बचने का कोई उपाय हो तो बता दो।" बाक़ी बतखों ने कहा।

"अब हम सब मरे हुयों की भांति निश्चल पड़ी रहेंगी। तब बहेलिया आकर सोचेगा कि हम सब मर गई हैं और एक एक को जाल से निकालकर नीचे डाल देगा, आखिरी बतख के नीचे गिरने तक निश्चल पड़ी रहकर इसके बाद हम सब एक साथ उड़ जाएंगी।" बूढ़ी बतख ने कहा।

दूसरे दिन बहेलिया आया। उसने सोचा कि सारी बतखें मर गई हैं और जाल खोलकर इतमीनान से एक एक बतख को नीचे गिराने लगा। सबको नीचे गिराकर वह पेड़ से उतर रहा था, तब सभी बतखें एक साथ उठकर उड़ गईं। इसे देख बहेलिया आश्चर्य में पड़ गया।

इस कहानी के सुनने के बाद सभी पक्षी जाकर बूढ़ी बतख से मिले और सबने उसे यह वृत्तांत भी बताया कि टिटिहरी पक्षी के अण्डों को समुद्र ने कैसे हड़प लिया है।

"हम सब जाकर हमारे राजा तथा श्री महाविष्णु के वाहन गरुडजी से मिलेंगे। वे बड़े ही दयालू हैं। मेरा विश्वास है कि वे अवश्य हमारी सहायता करेंगे।" बूढ़ी बतख ने कहा।

विचित्र जुड़वाँ

[८]

[विचित्र जुड़वों की खोज में गये हुए जुड़वें भाई जंगल में एक दाढ़ीवाले के हाथ में फंस गये, आखिर उसको पराजित कर उसके द्वारा अपूर्व शक्तियोंवाले भस्म एवं अंजन ले लिए। तीनों जंगल में यात्रा कर रहे थे, तब उदयन अचानक गायब हो गया। बाद–]

उदयन के गायब हो जाने के बाद संध्या कुमार तथा निशीथ ने अपने घोड़ों की बागड़ोर को कसकर रफ़्तार धीमी कर दी और धीरे से आगे बढ़ने लगे। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर महल के आगे उन्हें एक बड़ा कंदक दिखाई दिया। संध्या कुमार तथा निशीथ ने सोचा कि शायद उसका भाई घोड़े के साथ कंदक में गिर गया होगा। मगर बड़ी गहराई वाले उस कंदक में कहीं उदयन तथा उसके घोड़े का पता न लगा।

संध्याकुमार और निशीथ की समझ में कुछ न आया। यदि उस महल में प्रवेश करना चाहे तो कंदक की चौड़ाई हद से ज्यादा है। फिर सोचा कि कंदक की शुरूआत और अंतिम हिस्से का पता लगाया जाय तो उस महल में आसानी से प्रवेश किया जा सकता है।

"भैया! हमें किसी भी उपाय से सही इस कंदक को पार करना है। घोड़ों को दौड़ाते हुए आकर एक ही छलांग में इसको पार कर जायेंगे। पार कर गयें तो समझ लो, हम भाग्यवान हैं। यदि कंदक में गिर गये तो हम यथाशक्ति उदयन की खोज करेंगे।" इन शब्दों के साथ अपने भाई को उत्साहित किया।

इसके उत्तर में निशीथ ने कहा– "शवाश!" इसके बाद वे दोनों अपने घोड़ों पर थोड़ी दूर पीछे आये, तेजी के साथ आकर एक ही छलांग में कंदक को पार कर गये।

यों सोचकर संध्याकुमार तथा निशीथ अपने घोड़ों को हांकते कंदक के किनारे चलने लगे। मगर बहुत दूर जाने पर भी कंदक का उस पार उन्हें दिखाई न दिया। आखिर वे थककर उसी जगह आ पहुँचे जहाँ से वे निकले थे। इस से उन्होंने यह निर्णय किया कि उस कंदक के कोई प्रारंभ और अंत नहीं हैं। महल में किसी को घुसने से रोकने के लिए ही चारों तरफ़ यह कंदक खोदा गया है। लेकिन उन्हें महल में प्रवेश करने का मार्ग दिखाई न दिया।

थोड़ी देर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर संध्याकुमार ने निशीथ से कहा–

भाग्यवश दोनों किसी प्रकार के खतरे के बिना कंदक के उस पार पहुँचे, "यह सब भलाई के लिए मालूम होता है। अब हमें कोई चिंता नहीं, समझ लो, हम बाजी मार ले गये।" यों सोचकर दोनों भाई खुश हो उठे। इस खुशी में वे महल में तो पहुँचे, मगर वहाँ पहुँचकर देखते क्या हैं? उसमें एक भी प्राणी नहीं है। उसके असंख्य द्वार हैं, किंतु एक के भी किवाड़ नहीं हैं। वे एक-एक द्वार को पार करते गये, उन्हें प्रत्येक द्वार के दोनों तरफ़ मानवों की शिला-प्रतिमाएँ दिखाई दीं।

आखिर वे एक बड़े द्वार पर पहुँचे। परंतु वास्तव में वह द्वार नहीं था। वह एक

दीर्घकाय राक्षस था। उस रूप में आसमान को छूते हुए खड़े होकर वह सो रहा था। उसके पैरों के मध्य भाग में स्थित खाली जगह द्वार जैसे दिखाई दे रही थी। उस राक्षस के दोनों तरफ़ दो सिंहों की ऊँची प्रतिमाएँ थीं। वे सजीव प्रतीत होते हुए ऐसे लगती थीं कि मानो भयंकर रूप धारण कर किसी पर झपटने को तैयार हो। उस दृश्य को देख दोनों भाई चिल्ला उठे।

उस चिल्लाहट को सुन राक्षस जाग पड़ा। उसने संध्याकुमार तथा निशीथ को अपनी मुट्ठी में लेकर खुशी से कहा– "शबाश! दो और प्रतिमाएँ!" यह बात सुनते ही दोनों भाइयों ने अनुमान लगाया कि महल में अब तक देखी गई मानव मूर्तियाँ किसी जादू के कारण उस रूप को प्राप्त हो गई हैं, लेकिन किसी शिल्पी के द्वारा गढ़ी नहीं हैं।

अचानक इस प्रकार आफ़त में फंस जाने पर संध्याकुमार तथा निशीथ चिंतित हो उठे; लेकिन अब दुखी हो जाने से फ़ायदा ही क्या था?

ऐसी आफ़तें जीवन में अकसर हुआ करती हैं। वास्तव में आफ़त में फँसकर बुद्धिबल के द्वारा उनसे मुक्त होने में ही मानव की बुद्धिमत्ता है। इस विचार के आते ही उन दोनों ने हिम्मत बटोर ली। प्रखर बुद्धिवाले निशीथ ने सोचा–"क्या मृत्यु के भी इतनी सारी मौतें हैं? चाहे

जो हो, मैं इस राक्षस पर विजय पाने के लिए एक योजना बनाकर उसका प्रयोग करता हूं! इसमें संभवतः सफलता मिल जाय।"

यों सोचते हुए निशीथ राक्षस के सामने खड़े हो ललकार उठा-"अजी! हम को क्या मानते हो? हम लोग यहाँ पर चोरी से नहीं आये हैं। अमुक दाढ़ीवाले ने आप से एक समाचार बताने को कहा है। इसीलिए हम......" वह कुछ और कहने जा रहा था, तभी राक्षस ने जल्दबाजी में आकर कहा-"क्या कहा? क्या वह अभी तक जिंदा है? आज़ तक वह लौट नहीं आया तो हम ने सोचा कि वह किसी खतरे में पड़कर मर गया होगा! यह तो बताओ कि उसने तुम से कौन-सा समाचार कहला भेजा?"

इस पर निशीथ ने राक्षस से कहा-"उसके प्राणों के लिए कोई खतरा नहीं है। सुनते हैं कि किसी ने उसके जीवन के रहस्य का पता लगाया है। यह भी सुना है कि साथ ही उसके यहाँ के भस्म, अंजन और तौलिया भी हड़प लिया है। उनके बिना वह एक क़दम भी आगे बढ़ा नहीं पाता। इसलिए उसने यह समाचार तुम्हें देकर फिर से थोड़े अंजन, भस्म और तौलिया बहुत जल्द भिजवाने को कहा है।"

सारी बातें सुनकर राक्षस ने कहा-"ऐसी बात है! इसीलिए वह लौटकर नहीं आया है। अच्छा हुआ, उन दुष्टों ने उसकी माला हड़प नहीं ली। अगर वह अपनी माला भी खो बैठता तो उसको बचाना किसी से संभव नहीं है। अच्छी बात है! मैं अभी हो आता हूँ। तुम लोग यहीं रहकर किसी भी प्राणी को भीतर घुसने न दो।" यों कहकर राक्षस लंबे-लंबे डग भरते चल पड़ा।

राक्षस के चले जाने पर संध्याकुमार और निशीथ उछल पड़े। यह सोचकर वे फूले न समाये कि ऐसे बड़े राक्षस को

चकमा दिया गया। इतने में निशीथ ने कहा–"अब हमें एक क्षण भी विलंब नहीं करना है। राक्षस के लौट आने के पहले हमें इस महल के रहस्य का पता लगाना है!"

यह निर्णय करके दोनों भाई आगे बढ़े। थोड़े द्वार पार करके अंतिम द्वार तक पहुँचने पर उन्हें एक बहुत बड़ा सरोवर दिखाई पड़ा। उसमें सुंदर हँस तैर रहे थे।

सुबह से निकले वे दोनों भाई अपनी प्यास बुझाने के ख्याल से सरोवर के निकट पहुँचे। संध्याकुमार ने पहले सरोवर में उतरकर अंजुली भरकर पानी पिया। वह पानी गले में उतरा ही था कि संध्याकुमार शिला प्रतिमा के रूप में बदल गया।

अपनी आँखों के सामने संध्याकुमार को शिला प्रतिमा के रूप में बदलते देख निशीथ जड़वत खड़ा रह गया। उसने सोचा–"अच्छा हुआ कि मैंने जल्दबाजी में आकर पानी न पिया। मैंने भी पानी पिया होता तो मेरी भी यही हालत हो जाती। उदयन की चिंता में हम परेशान थे, ऐसी हालत में संध्याकुमार की भी दुर्गति हो गई। मैं भी यदि किसी आफ़त में फँस जाऊँ तो दुनिया को हमारी खबर तक न लगेगी।"

निशीथ यों चिंता करते थोड़ी दूर और आगे बढ़ा। उसे एक बहुत बड़ा बगीचा दिखाई दिया। उस बगीचे में तरह-तरह के फलों के वृक्ष थे। सब से विचित्र दृश्य एक आम के पेड़ का था। वह पेड़ फलों से लदा हुआ था। कहीं पत्ते दिखाई तक न देते थे; फल ही फल उस पेड़ में भरे पड़े थे।

निशीथ को अब भूख सताने लगी। जल्दी-जल्दी उसने कई फल तोड़ डाले। अपने सामने फलों का ढेर लगाया। एक फल को उठाकर चखा ही था कि वह बंदर के रूप में बदल गया। बंदर के रूप में बदलते ही वह सोचने लगा–

"बाप रे बाप! न मालूम और क्या क्या होने जा रहा है! राक्षसों की इस माया को कौन जान सकता है?" यों सोचकर उसने बाक़ी फल छोड़ दिये। बंदर के रूप में स्थित निशीथ अपने भाई संध्याकुमार के द्वारा प्रतिमा के रूप को प्राप्त उस सरोवर के निकट आकर उसका चक्कर काटने लगा। इतने में सरोवर से बुलबुलों की ध्वनि आई। इसके थोड़ी ही देर बाद पानी में से एक हँस उसकी ओर आते दिखाई दिया। यह दृश्य बंदर के रूप में स्थित निशीथ स्पष्ट रूप से देख पा रहा था।

थोड़ी देर बाद वह हंस पूर्ण रूप से बाहर आया और एक मनुष्य के रूप में बदल गया। उसे देख निशीथ ख़ुशी के मारे उछल पड़ा। क्योंकि वह व्यक्ति कोई और न था, बल्कि कंदक में गिरकर गायब हुआ उसका अपना ही प्यारा भाई उदयन था।

उदयन ने तट पर आते ही संध्याकुमार की शिला प्रतिमा को देखा, वह जड़वत रह गया।

इतने में बंदर के रूप में स्थित निशीथ उदयन के पैरों से लिपट गया। उसको पहले एक साधारण बंदर समझकर उदयन ने धुतकारा। मगर वह बराबर पैरों से लिपटता जा रहा था, इसे देख उदयन के मन में यह शंका पैदा हो गई कि उसका भाई निशीथ कहीं इस तरह बदल न गया हो।

पर उदयन की समझ में न आया कि क्या किया जाय। संध्याकुमार इस प्रकार शिला-प्रतिमा के रूप में क्यों परिवर्तित हो गया है, बंदर के रूप में रहनेवाला व्यक्ति उसका भाई है या नहीं, ये सारी बातें उसे कैसे मालूम होंगी?

थोड़ी देर तक वह सोचता रहा। तब झट से किसी उपाय के सूझने का अभिनय

करते जेब में से भस्म एवं अंजन बाहर निकाले। तब उसने संध्याकुमार की शिलामूर्ति पर काला भस्म छिड़क दिया। पर कोई परिवर्तन दिखाई न दिया। पीला अंजन मलकर देखा, तब भी शिला प्रतिमा जैसी की तैसी रह गई। इस पर लाल अंजन मल दिया, तब भी कोई फ़रक़ दिखाई न दिया। इतने सारे प्रयत्नों के बावजूद भी कोई अच्छा परिणाम न निकलते देख उदयन ने उन अंजन और भस्मों को बंदर के रूप में स्थित निशीथ पर छिड़क दिया, फिर भी वह बंदर जैसा ही बना रहा, कोई परिवर्तन न हुआ। वह अत्यंत निराश हो गया।

आखिर उदयन सरोवर के तट पर बैठे किन्हीं विचारों में डूब गया। तब सरोवर के हंसों में से एक उदयन के पैरों के निकट से होकर गुजरा। उदयन ने चट से उसको पकड़कर बाहर निकाला। बाहर आते ही वह हंस एक सुंदर कन्या के रूप में बदल गया।

वह कन्या लज्जा के मारे सिर झुकाकर मौन खड़ी रही। उदयन ने ही उससे पूछा—"तुम कौन हो? इस प्रकार हंस के रूप में इस सरोवर में क्यों रहती हो? अपना परिचय तो दो..." कुछ और कहने को था।

इतने में ये शब्द सुनाई दिये—"अबे, तुम लोग कहाँ हो?"

इस पुकार को सुनते ही उस कन्या ने भाँप लिया कि उस महल का पहरा देने वाला राक्षस ही स्वयं उस ओर चला आ रहा है, तब उसने कहा—"यह वृत्तांत बाद को सुनाऊँगी। पहले हमें अपने प्राण बचाने हैं।" इन शब्दों के साथ उसने संध्याकुमार की शिला प्रतिमा को तथा प्रतिमा के पास स्थित बंदर को सरोवर में ढकेल दिया।

इसके दूसरे ही क्षण वे दोनों हंसों के रूप में बदल गये। तब उदयन का हाथ पकड़कर वह भी सरोवर में कूद पड़ी। फिर क्या था, देखते-देखते वे दोनों भी हंस बन गये। (और है)

जीवित पिशाच

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाल सदा की भांति श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–'राजन, अतीत शक्तियाँ मानव में अहंकार पैदा करती हैं। इसके उदाहरण स्वरूप में तुम्हें प्रवीण की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनो।"

बेताल यों कहने लगा: प्राचीन काल में सुवर्णगिरि पर शासन करनेवाला राजसिंह असमर्थ था। उसने शासन संबंधी सारे कार्यों का भार अपने सरकारी अफ़सरों को सौंप दिया और उन्हें इन मामलों में पूरी स्वतंत्रता दे दी। इस कारण से शासन के कार्यों में अत्यधिक भ्रष्टाचार फैल गया। मंत्रियों से लेकर द्वारपालों तक सब अनुचित मार्गों का अवलंबन कर जनता को सताने लगे।

बेताल कथाएँ
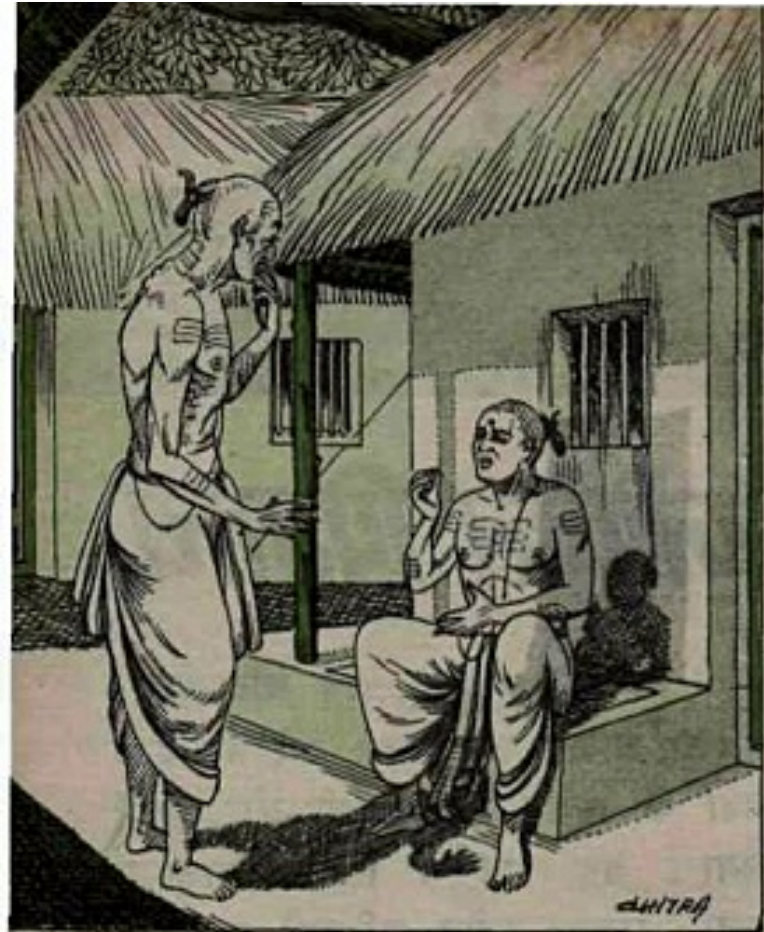
सर्वत्र अधर्म और अन्याय फैल गया। मगर राजा इन बातों से बिलकुल अपरिचित था। राज कर्मचारियों पर उसका अपार विश्वास था।

सुवर्णगिरि नगर में एक गरीब ब्राह्मण था। उसका पुत्र प्रवीण था। प्रवीण बचपन में ही असाधारण अक्लमंद निकला, इसलिए पिता ने उसको समस्त शास्त्र और विद्याएँ पढ़ने का अवसर दिया। इसके बाद प्रवीण अनेक विश्वविद्यालयों में जाकर असाधारण पांडित्य प्राप्त करके सुवर्णगिरि को लौट आया।

प्रवीण के पिता ने सोचा कि उसका पुत्र अपने पांडित्य के द्वारा जीविकोपार्जन का कोई मार्ग ढूंढ़ लेगा; मगर [illegible] हुआ। प्रवीण अपने चतुर्दिक के जीवन को देख चिंता में डूब गया।

"बेटा, हम गरीब हैं। तुम्हारे पांडित्य के द्वारा ही हमको अपने पेट भरने हैं। तुम अपने पांडित्य का प्रदर्शन करके सत्कार और सम्मान प्राप्त न करके घर पर ही बैठे रहोगे तो कैसे हमारे पेट भरेंगे?" पिता ने पूछा।

"पिताजी! मुझे लगता है कि मेरी सारी पढ़ाई बेकार है। आज के जन-जीवन को देखने पर जीवन के प्रति मेरे मन में विरक्ति पैदा होती जा रही है। मैं अपने पांडित्य का प्रदर्शन कर किसके द्वारा सम्मान प्राप्त करूं? मैं समझ गया हूँ कि मेरा सम्मान करनेवाले व्यक्ति कैसे लोग हैं?" प्रवीण ने उत्तर दिया।

पिता को अपने पुत्र प्रवीण के पांडित्य पर संदेह हुआ। उसने सोचा कि प्रवीण की शिक्षा में कोई त्रुटि है, इसीलिए वह विरक्त रहता है। उसने अपने परिचित बड़े-बड़े विद्वानों को बुलवाकर उनके द्वारा अपने पुत्र के पांडित्य की परीक्षा कराई। उन महा पंडितों ने प्रवीण के साथ चर्चा करके उसके पिता से कहा–"तुम्हारा पुत्र एक असाधारण पंडित है। ऐसे पुत्र पर तुम्हें गर्व करना चाहिए।"

उन पंडितों के द्वारा प्रवीण का समाचार राजा के कानों में पहुँचा। उसने विशेष रूप से प्रवीण को निमंत्रण भेजा। प्रवीण का पिता परम प्रसन्न हुआ। मगर प्रवीण ने राजदरबार में जाने में उत्साह नहीं दिखाया। पिता ने उसको अनेक प्रकार से समझाया और आखिर उसको राजसभा में ले गया।

प्रवीण ने राजा को देखते ही रूखे स्वर में पूछा—"आप ने मुझे यहाँ पर क्यों बुला भेजा?" प्रवीण का यह उत्तर सुनकर सभासद सब चकित रह गये। प्रवीण के पिता का शरीर भय के मारे आपाद मस्तक कांप उठा।

लेकिन राजा अपमानित होकर भी नाराज़ नहीं हुआ। उसने शांत स्वर में कहा—"मैंने सुना है कि तुम बड़े पंडित हो! इसलिए तुम्हारा बढ़िया सत्कार करने के लिए बुलवा भेजा है।"

राजा के वचन सुनकर प्रवीण ठठाकर हँस पड़ा।

"तुम हँसते क्यों हो?" राजा ने खीझ कर पूछा।

"तुम्हारे शासन में जनता अन्न के वास्ते तिल-तिलकर मर रही है। तुम्हारे अधिकारी उनके रक्त को जोंकों की तरह चूस रहे हैं। तुम्हारे खजाने में जनता से लूटा हुआ धन भरा हुआ है। एक असमर्थ व्यक्ति के द्वारा अन्याय पूर्ण धन से सम्मान प्राप्त करना मुझे पसंद नहीं है। इसीलिए मुझे हँसी आ गई।" प्रवीण ने जवाब दिया।

राजा ने क्रोध में आकर कहा—"रे मूर्ख! तुम जानते हो कि किससे बात करते हो? और क्या कहते हो? साधारण सभ्यता तक न जाननेवाले तुम कैसे पंडित हो? तुम अगर यह समझते हो कि मेरा शासन त्रुटि पूर्ण है तो इसे सुधार लो। तुम अपने आरोपों को सही साबित करो। वरना तुम्हें कठिन दण्ड देकर तुम को देश निकाले की सजा दूंगा।"

प्रवीण ने इस चेतावनी का कोई जवाब न दिया।

"इस द्रोही को पचास कोड़े लगाकर देश से निकाल दो।" राजा ने अपने सेवकों को आदेश दिया।

प्रवीण कोड़ों की मार खाकर वहाँ से चल पड़ा। ज़िंदगी के प्रति उसके मन में पूरी विरक्ति पैदा हो गई। वह यह सोचकर मरने को तैयार हो गया कि उसके पांडित्य ने उसको असमर्थ बना दिया है।

प्रवीण बिना किसी लक्ष्य के आगे बढ़ा जा रहा था, उसे थोड़ी दूर जाने पर सामने एक श्मशान तथा उसमें जलनेवाला एक शव दिखाई दिया। वह भी उस चिता में कूदकर जलने का निश्चय कर उसके समीप पहुँचा। तब उसे एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। चिता के समीप में कुछ पिशाच भारी पैमाने पर कोई कार्य कर रहे थे। प्रवीण थोड़ी दूर पर खड़े हो पिशाचों की करनी को बड़ी आतुरता के साथ देखता रहा।

पिशाचों के बीच दो खोपड़ियाँ ज़मीन पर रखी गई थीं। उन पर विवाह के तिलक सजाये गये थे। उनके सामने विवाह के लिए आवश्यक सारी चीजें रखी गई थीं। कुछ पिशाच हड्डियों से शहनाइयाँ बजा रहे थे। कुछ पिशाच मिट्टी के बर्तन औंधे मुंह रखकर उन पर ताल दे रहे थे। बाक़ी पिशाच नृत्य कर रहे थे।

उन पिशाचों को देखने पर प्रवीण को बड़ा आनंद आया। मानवों की ज़िंदगी की अपेक्षा उनकी ज़िंदगी लाख गुना अच्छी प्रतीत हुई। वह जब चिता के निकट पहुँचा, तब सब पिशाच जहाँ के तहाँ रुक गये। प्रवीण चिता में कूदने को हुआ।

दो पिशाचों ने उसको पकड़कर रोका। उन्होंने प्रवीण से पूछा—"तुम मरना क्यों चाहते हो?"

"मरकर मैं भी तुम लोगों जैसे पिशाच बनना चाहता हूँ।" प्रवीण ने उत्तर दिया।

"पगले! क्या तुम सोचते हो कि मरे हुए सभी व्यक्ति पिशाच बन जाते हैं? मनुष्य का जन्म सर्वोत्तम है। यह बताओ कि तुम मरना क्यों चाहते हो? तुम्हारे कारण सही हो तो हम तुम को मरने देंगे।" एक पिशाच ने कहा।

"छी: छी:! मनुष्य के जन्म से हीन दूसरा कोई नहीं है! कोई भी जानवर अपनी जाति के जानवर को नहीं खाता। वह काम केवल मनुष्य करता है। उसके कोई नीति और नियम नहीं हैं। भिखारी हत्यारा बन रहा है! व्यापारी धोखा दे रहे हैं! अधिकारी रिश्वत लेते हैं। शासक जनता का ख़ून चूस रहे हैं और उनके ख़ून को धन में परिवर्तित कर रहे हैं। धर्म अंधा हो गया है। न्याय का मुँह बंद कर दिया गया है। पंडित अपने पांडित्य को बेच रहे हैं। औरतें अपने शील को बेच रही हैं। इसीलिए मैं मरकर तुम में से एक बनना चाहता हूँ।" प्रवीण ने अपना विचार प्रकट किया।

एक पिशाच ने हँसकर कहा–"तुम जिन लोगों की बात कहते हो, वे ही लोग मरकर पिशाच बन सकते हैं! तुम्हारे जैसे व्यक्ति के लिए पिशाच बनने की गुंजाइश नहीं है! हम लोग जीवित रहते वक़्त पाप करके पिशाच बन गये हैं। लो देखो, यह मिलावट की चीज़ें बेचनेवाला व्यापारी है। यह है, जनता के धन को झूठे आश्वासन देकर लूटनेवाला अफ़सर है; और यह वैद्य है। रोगियों से ज्यादा धन वसूल करके धन न देनेवालों को बीमारियों के द्वारा सड़ने देकर मारनेवाला व्यक्ति है। हम सब मरकर पिशाच बन गये हैं। अब हमारे भीतर कोई स्वार्थ नहीं है। दूसरों को दगा देने की प्रवृत्ति नहीं है, हम सब साथ मिलकर जी रहे हैं। इस ज़िंदगी में बड़ा ही सुख है।

यह बात हमें मरने के बाद ही मालूम हो गई।"

"मैं भी शायद भाग्यवश पिशाच बन जाऊँ? क्या पता? इसलिए मुझे भी मरने दो, तुम जैसे जीने की मेरी भी बड़ी इच्छा है।" प्रवीण ने कहा।

एक पिशाच ने यों समझाया: "तुम कभी पिशाच न बन सकोगे। इन खोपड़ियों को देखो; ये जब जीवित थे, तब जाति-पांति का ख्याल किये बिना दोनों ने परस्पर प्यार किया। इनके माता-पिता ने इनके विवाह के लिए स्वीकृति न दी। इसलिए ये एक वैद्य के यहाँ ज़हर मोलकर उसे पी करके मर गये हैं। इन दोनों को एक ही क़ब्र में दफ़नाया गया। मगर ये पिशाच नहीं बन पाये। धन के लोभ में पड़कर जिस वैद्य ने इन्हें ज़हर बेचा था, वह आज ही मर गया है। इस चिता में उसी का शव जल रहा है। मृत प्रेमिकों की खोपड़ियाँ निकालकर हम इनका विवाह रच रहे हैं।"

"तुम पिशाचों के संग रहना मेरे लिए भले ही संभव न हो, मगर मुझे मरना ही होगा। क्योंकि मैं जीवित पिशाचों के बीच अपने दिन काट नहीं सकता।" यों कहते प्रवीण चिता में कूद पड़ा। दूसरे ही क्षण उस चिता से बाहर निकलनेवाला पिशाच प्रवीण को दूर ढकेलते बाहर आ पहुँचा। वह पिशाच मृत वैद्य ही था।

इस पर प्रवीण ने क्रोध में आकर डांटते हुए कहा—"दो प्राणों की बलि लेनेवाले दुष्ट! मरने से मुझको रोकनेवाले तुम कौन होते हो?"

"भाई! इस वक़्त मेरे भीतर ऐसा दकियानूसी विचार नहीं है। तुम बड़े पंडित हो! आत्महत्या करना कायरों का काम है। तुम जवान हो, चरित्रवान भी हो। तुम मानव-जीवन को सुधारने का प्रयत्न करो।" वैद्य ने समझाया।

प्रवीण ने गंभीरतापूर्वक विचार करके कहा—"मैं आत्महत्या करने का प्रयत्न

बुद्धि-बल

एक राजा के दो पत्नियाँ थीं। उनके दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र अक्लमंद था, मगर दूसरा मंद बुद्धिवाला था। नियमानुसार बड़े पुत्र को युवराज बनाना था, पर छोटी रानी ने हठ किया कि उसके पुत्र को ही युवराज का पद प्राप्त हो।

राजा ने सुझाया कि दोनों राजकुमारों की परीक्षा लेकर उस में जो विजयी होगा, उसी को युवराजा बनाया जाएगा। राजा ने भरी सभा में दोनों राजकुमारों से यह सवाल पूछा–"हमारे देश के हाथी बैल बन जायें, बैल भैंसें बने, भैंसें कुत्ते बने, कुत्ते बिल्लियाँ बन जायें, बिल्लियाँ चूहें बने तो उस स्थिति को बदल कर साधारण स्थिति में लाने के लिए क्या करना होगा?" छोटे राजकुमार ने झट जवाब दिया–"मांत्रिक को बुलवाकर मंत्र फूंकना होगा।" पर बड़े राजकुमार ने सोच कर उत्तर दिया–"देश के धान्यागार भरे रहें, नदियों का पानी बेकार न जाय, तालाबों को गहरा बनावें तथा पानी की सिंचाई के लिए उचित प्रबंध किया जाय!"

"क्या राजा के सवाल का यही जवाब है?" कुछ लोगों ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ, हाँ! अकाल पड़ने पर ही उपर्युक्त हालत पैदा होगी! अब यह निर्णय हो गया कि बड़ा राजकुमार ही युवराजा है।" राजा ने फ़ैसला सुनाया।
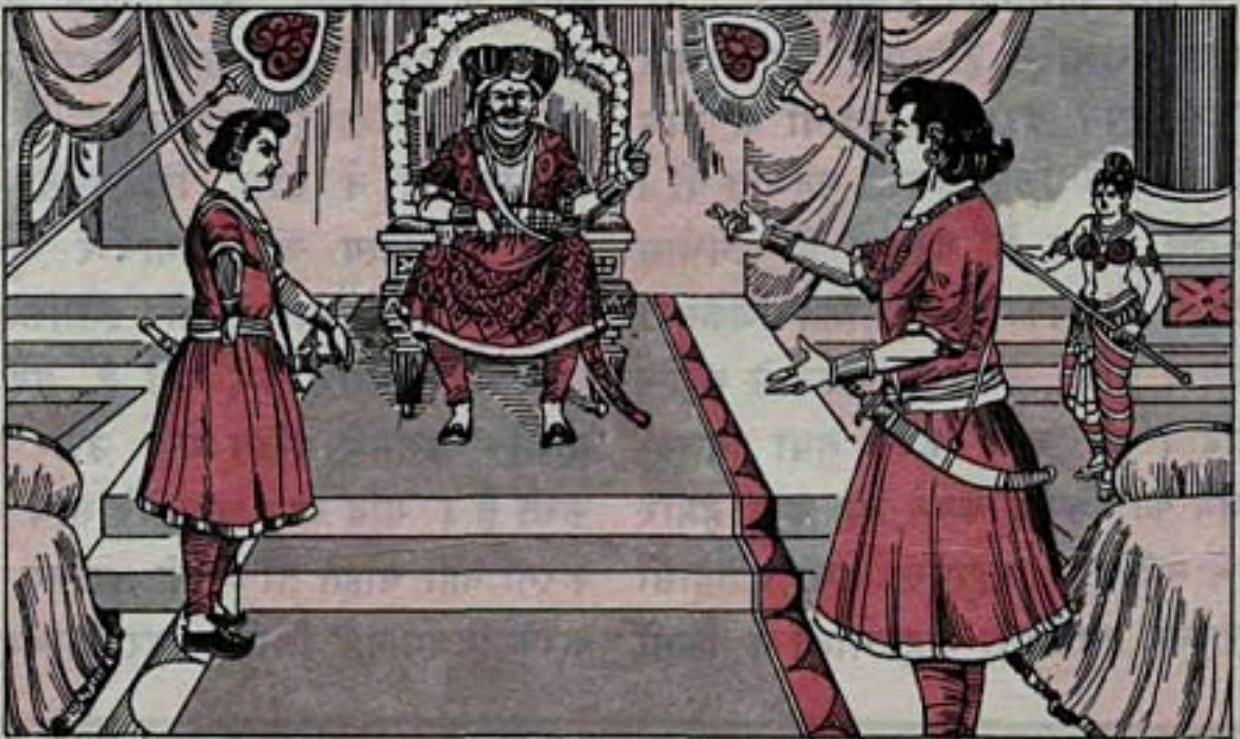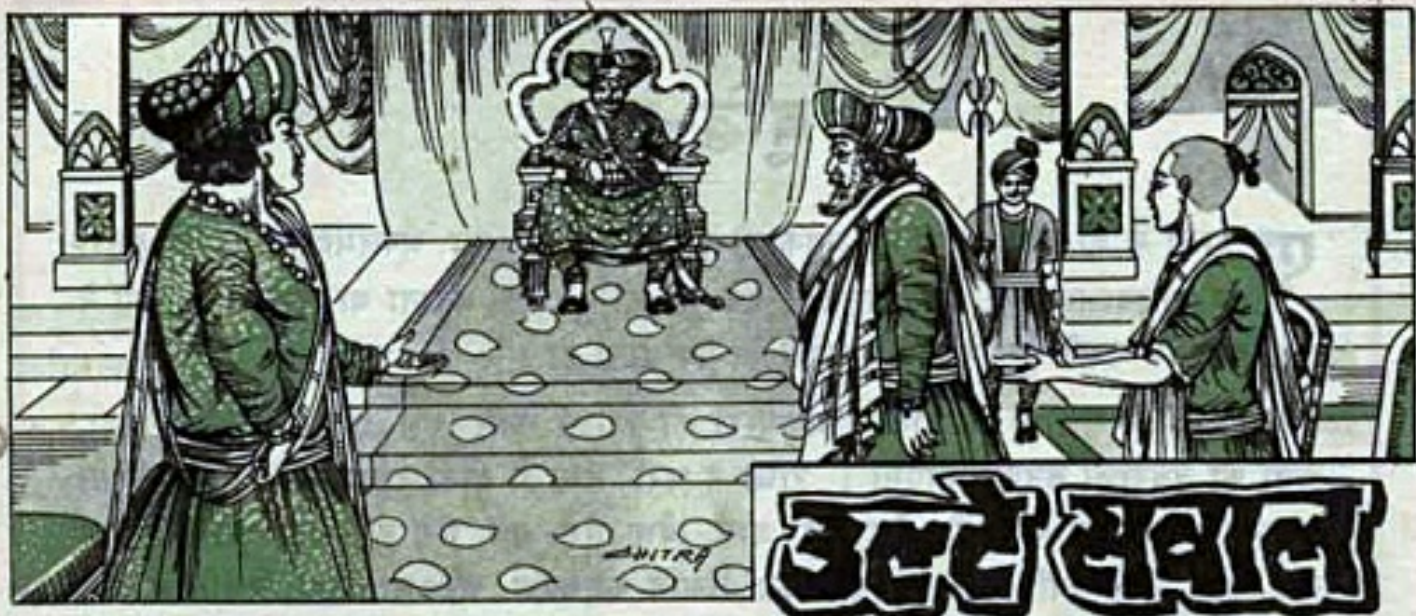
उल्टे सवाल

पांड्य देश में हरिशंकर नामक एक बड़ा विद्वान था। उसके मन में यह विचार पैदा हुआ कि वह यह साबित कर दिखावे कि उससे बड़ा विद्वान देश भर में दूसरा नहीं है। वह अनेक देशों में गया, वहाँ के पंडितों से चर्चा करके उन्हें पराजित किया, विजय-पत्र पाते हुए कई वर्षों के बाद काशीनगर में पहुँचा।

काशी राजा ने हरिशंकर का विचार जानकर अपने दरबारी विद्वानों के साथ चर्चा करने के लिए उसको अनुमति दी।

काशी राजा के दरबार में उनचास विद्वान थे। उनका प्रधान पंडित गजकेसरी उपाध्याय था। उसने हरिशंकर से कहा— "पांडित्य की चर्चा करने तथा विजय-पराजय का निर्णय करने की प्रथा हमारे देश में नहीं है। महापुरण तथा इतिहासों की रचना करनेवाले महात्माओं ने किसी पंडित के साथ चर्चा नहीं की और न किसी को हराया है। एक पंडित का दूसरे को हराना उसका अपमान करना ही है। हमारा विश्वास है कि चाहे कोई जितना भी बड़ा विद्वान क्यों न हो, उससे भी बड़ा विद्वान ज़रूर होगा। पांडित्य की कोई सीमा नहीं होती। उसका अंतर संदर्भ के अनुसार अपने आप मालूम होगा। चर्चा के द्वारा उनका निर्णय करने की हमें कोई आवश्यक़ता नहीं है।"

हरिशंकर ने सोचा कि उसके तथा उसके पांडित्य का समाचार सुनकर गजकेसरी डर गया है और इसीलिए वह बचने की कोशिश कर रहा है, तब वह बोला—"असमर्थ पंडित यही उत्तर दिया करते हैं। यदि आप लोग मेरे साथ चर्चा करना नहीं चाहते तो अपनी पराजय मान करके विजय-पत्र लिखवा कर दीजिए।"

बनवारी लाल

यह बात सुनते ही एक युवा पंडित ने कहा–"पंडित हरिशंकर को संतुष्ट करने के लिए मैं उनके साथ चर्चा करूँगा। मैं अभी तक विद्यार्थी दशा में ही हूं। इसलिए मैं पराजित हो जाऊँगा तो मेरे लिए अपमान की कोई बात न होगी। यदि वे विजयी हुए तो इस आशय का पत्र वे अपने साथ ले जायेंगे कि मुझ को ही उन्होंने पराजित किया है। पहले उन्हें मुझसे तीन प्रश्न पूछने के लिए कहिये, बाद को मैं उनसे तीन प्रश्न पूछूंगा।"

राजा ने इसके लिए अपनी सम्मति दी। इस पर हरिशंकर ने बड़े ही उत्साह में आकर पूछा: "इस विश्व से बड़ी वस्तु कौन है?"

"देखिये तो, आसमान है!" युवा पंडित ने उत्तर दिया।

अपने सवाल का उत्तर दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म है और लौकिक दृष्टि से आशा है, यह हरिशंकर का विचार था, मगर युवा पंडित ने उस उत्तर का विरोध नहीं किया। इसलिए हरिशंकर ने अपना दूसरा सवाल पूछा–"मनुष्य को महान बनना है तो क्या करना होगा?"

"मन में इसकी कल्पना करके शब्दों में उसे प्रकट करना होगा।" युवा पंडित ने उत्तर दिया।

इसका विरोध हरिशंकर न कर पाया। उसने अपना तीसरा सवाल पूछा–"समस्त को जानना हो तो क्या करना है?"

"हमारी दृष्टि तथा सूर्य का प्रकाश ठीक हो तो सारी बातें समझ में आ जाएंगी।" युवा पंडित ने जवाब दिया।

हरिशंकर इस जवाब का भी विरोध न कर पाया। फिर भी उसने कहा—"तुम्हारे उत्तर सब सरल हैं। उनमें पांडित्य का प्रकर्ष दिखाई नहीं देता।"

"जी हाँ! मैं आयु में छोटा हूँ। इसलिए मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप जवाब दे पाया। अगर वे जवाब गलत हों तो उनका खंडन कीजिए।" युवक पंडित ने कहा।

"अच्छी बात है! अब तुम अपने सवाल पूछो तो देखें!"

"आप कहाँ से पधारे हैं?" युवक पंडित ने पूछा।

हरिशंकर की समझ में न आया कि इसका क्या जवाब दे। तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो उसे यही उत्तर देना पड़ेगा कि "मैं नहीं जानता।" लेकिन वह किस देश या शहर से यहाँ पर आया है; यह समाचार वह युवक पंडित भी जानता है। इसलिए इस उत्तर के देने में कोई मतलब न था।

"तुम्हीं बताओ!" हरिशंकर ने पूछा।

"सब लोग इस जगत में जहाँ से आते हैं, आप भी वहीं से आये हैं। लेकिन यह बताइए कि आप कहाँ जायेंगे?" युवक ने पूछा।

इसका भी उत्तर तात्विक दृष्टि से यही बताना होगा कि "मैं नहीं जानता।"

"तुम्हीं बताओ।" हरिशंकर ने पूछा।

"आप सारे देश के पंडितों पर विजय पाने की इच्छा को त्याग कर अपने देश को लौट जायेंगे। अब मेरा तीसरा सवाल है कि आप यहाँ पर क्या लाये और यहाँ से क्या ले जायेंगे?" युवा पंडित ने पूछा।

"इस सवाल का मैं जवाब दे सकता हूँ। मैं यहाँ पर अहंकार लेकर आया, उसके भार को यहाँ पर त्याग कर विवेक को साथ ले जा रहा हूँ।" इन शब्दों के साथ हरिशंकर ने युवा पंडित के साथ आलिंगन किया।

त्याग देता हूँ। तुम सब पिशाच मिलकर क्या मेरी एक सहायता करने को तैयार हो?"

"अच्छी बात है! बताओ, हम ज़रूर तुम्हारी मदद करेंगे।" पिशाचों ने उत्तर दिया।

"तुम लोग नगर में जीवित सब पिशाचों को यहाँ पर ले आओ।" प्रवीण ने आदेश दिया।

शीघ्र ही नगर के सैकड़ों प्रतिष्ठित व्यक्ति श्मशान में हाज़िर हुए। वे अपने चारों तरफ़ फैले पिशाचों को देख कांप रहे थे।

"तुम सब लोग जनता को धोखा-दगा देनेवाले हो न? सच बताओ!" प्रवीण ने पूछा।

वे सब सिर झुकाकर मौन रह गये।

"तुम सब लोग राजदरबार में चलो। राजा के सामने तुम लोग झूठ बोलोगे तो ये सारे पिशाच तुम्हें नोच-नोचकर खा डालेंगे। तुम लोगों ने जो-जो अत्याचार एवं अन्याय किये हैं, उन सबको राजा के समक्ष स्वीकार करो।" यों उन्हें चेतावनी देकर प्रवीण ने पिशाचों को आदेश दिया–"तुम लोग इन सबको राजा के दरबार में ले आओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

राजदरबार में नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को कांपते हुए अपराधियों की भांति प्रवेश करते देख राजा आश्चर्य में आ गये। उन्हें दरबार में प्रवेश करानेवाले पिशाच राजा तथा दरबारियों को दिखाई न दे रहे थे।

"तुम सब किस प्रकार राजा को धोखा देकर जनता को सता रहे हो, तुम्हारा स्वार्थ कैसे पूरा करते हो, सारी बातें स्पष्ट महाराजा के सामने प्रकट करो।" प्रवीण ने जीवित पिशाचों से कहा।

अपने पीछे अदृश्य रूप में स्थित पिशाचों से डरकर सबने अपने पापपूर्ण कार्यों को स्वीकार कर लिया। तब जाकर

असमर्थ राजा की आँखें खुल गईं। राजा ने उन सबको देश निकाले का दण्ड सुनाया। उनके साथ लौटनेवाले प्रवीण को वापस बुलाकर राजा ने कहा–"तुम मेरे अंतरंग सलाहकार के रूप में रहो और मेरे देश में न्याय का शासन चले, इसकी जिम्मेदारी तुम ले लो।" इस बात को प्रवीण ने स्वीकार किया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा– "राजन! पिशाच के रूप में जीवन बिताने का मौक़ा न मिलने पर भी मरने के लिए निश्चय किया हुआ प्रवीण पिशाचों की मदद के प्राप्त होते ही मानव जीवन को सुधारने के प्रयत्न में क्यों लग गया? उसके पांडित्य तथा आचरण में कैसा संबंध है? उसने पद के वास्ते पांडित्य को क्यों तिलांजलि दी? इन संदेहों का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया: "प्रवीण के पांडित्य तथा उसके आचरण में अत्यंत निकट संबंध है। वह सच्चे अर्थों में एक पंडित है। पांडित्य को बेचने का विचार वह नहीं रखता था। वह चाहता था कि उसका पांडित्य जनता के बीच लोकप्रिय हो। अराजक स्थिति में पांडित्य नहीं पनपता। इसीलिए उसने आत्महत्या करनी चाही। अराजकता को दूर करने की शक्ति एवं सामर्थ्यों को पांडित्य ने उसे प्रदान नहीं किया। जब उसे यह मालूम हुआ कि इस कार्य में उसे पिशाच सहयोग दे सकते हैं तब वह उनकी मदद से अराजकता के कारण बननेवालों को दण्ड देने को तैयार हो गया। वह राजा का अंतरंग सलाहाकार भी इसलिए बना कि उसके द्वारा पांडित्य को जनता के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए अनुकूल वातावरण पैदा किया जा सकता है। प्रवीण ने कभी अपने पांडित्य को नहीं त्यागा।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

१५८. प्राचीन मद्य-पात्र

मध्यधरा सागर में २,१०० वर्ष पूर्व एक जहाज डूब गया। पुरा तत्ववेत्ताओं ने उसको बाहर निकाला तो उसमें चित्र में दिखाई देनेवाले मद्यपात्र जैसे पात्र कई हजार मिले। इनके साथ अनेक विचित्र वस्तुएँ भी प्राप्त हुईं। ये ग्रीक तथा रोम से संबंधित हैं।

बच्चों में भगवान

एक जमाने में विदर्भ देश में महेन्द्र नामक एक नामी जादूगर था। उसने राजा तथा महाराजाओं को प्रसन्न कर उपाधियाँ प्राप्त कीं और अपार धनार्जन भी किया। लेकिन वह बड़ा दानी था, इसलिए उसकी कमाई का अधिकांश भाग उसके हाथों में ही खर्च हो गया।

महेन्द्र का पुत्र जितेन्द्र जादूगरी विद्या में अपने पिता से अधिक प्रवीण था। मगर उसके जमाने में जादूगरी के प्रति आदर घट गया था। आमदनी कम हो जाने पर भी जितेन्द्र अपने पिता जैसे दान देकर निर्धन बन गया।

जितेन्द्र के दो पुत्र थे। उसने अपने दोनों पुत्रों को जादूगरी सिखाई। जितेन्द्र ने इस विचार से यह विद्या अपने पुत्रों को सिखाई कि एक तो वह उनका पेशा है और दूसरी बात यह है कि फिर से शायद जादूगरी के प्रति देश में आदर प्राप्त हो जाय!

जितेन्द्र का बड़ा पुत्र रामभद्र हद से ज्यादा धन खर्च करनेवाला था। बचपन में उसे अपने पिता से सदा बिना मांगे धन मिला करता था। मगर हालत के बदल जाने पर भी वह इस बात को समझ न पाया। इसलिए उसके मांगने पर पिता धन न देते तो वह घर में ही चोरी करने लग गया था। यह बात मालूम होने पर जितेन्द्र ने गुस्से में आकर रामभद्र को पीटा। रामभद्र रूठकर घर से चला गया, फिर लौटकर न आया।

क्रोध में आकर जितेन्द्र ने रामभद्र को पीटा था। मगर वह उसको प्राणों से ज्यादा प्यार करता था। उसके भाग जाने पर उसके माता-पिता उसी की चिंता में बीमार पड़े और कुछ ही दिनों में मर

गये। इससे हुआ यह कि जितेन्द्र का दूसरा पुत्र लक्ष्मीचन्द अकेला रह गया और वह आवारा निकला।

लक्ष्मीचन्द दृढ़ चित्त वाला था। वह गाँवों में घूमते, गलियों में जादू दिखाते, अपना पेट पालने लगा। उस कमाई से संतुष्ट होकर वह अपने दिन बिताने लगा।

एक दिन लक्ष्मीचन्द एक गली में अपने जादू का प्रदर्शन कर रहा था। उसे देखने कई बच्चे वहाँ पर जमा हुए। लक्ष्मीचन्द यह जानता था कि उन बच्चों के द्वारा उसे ज्यादा पैसे मिलेवाले नहीं हैं। फिर भी अपना जादू उन्हें दिखाकर सबको प्रसन्न चित्त बना रहा था।

इतने में बगल के घर से एक लड़के के दहाड़ मारकर रोने की आवाज सुनाई दी। लक्ष्मीचन्द ने अपने जादू का प्रदर्शन रोक दिया और उस घर में पहुँच कर देखता क्या है, एक गृहिणी अपने चार साल के लड़के को बुरी तरह से पीट रही है।

लक्ष्मीचन्द के कारण पूछने पर उस गृहिणी ने बताया कि उस लड़के का पिता हाल में बीमार पड़ गया था। उस गृहिणी ने भगवान से मनौती की थी कि यदि उसके पति की बीमारी दूर हो जाएगी तो घर भर के लोग एक सप्ताह दुपहर तक उपवास करके भगवान के दर्शन कर तब

भोजन करेंगे। भगवान की कृपा से बीमारी ठीक हो गई। जैसे-तैसे छे दिन बीत गये। आज लड़के को दुपहर को खाना खिलाये बिना रोकना मुश्किल हो गया है। वह लड़का भूख के मारे रो रहा है। उस गृहिणी को भगवान के दर्शन करने के लिए जाना था। समझा-बुझाने पर वह मानता न था, इसलिए उसे पीट रही है।

लक्ष्मीचन्द को लगा कि लड़के को भूखा रखने के साथ पीटना भी अन्याय है। उसने उस गृहिणी से कहा—"माई! लोग कहते हैं कि बच्चों में भगवान निवास करते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि

31

खाने के बाद लक्ष्मीचन्द ने उस गृहिणी से कहा–"माई! अपने पुत्र से भी ज्यादा माननेवाले आप के भगवान कहाँ पर हैं? उन्हें देखने की मेरी भी तो बड़ी इच्छा है।"

गृहिणी ने हंसकर कहा–"भगवान का मतलब क्या तुम साधारण भगवान को समझते हो? वह तो प्रत्यक्ष देवता है! तुमसे बातचीत करेगा। तुम्हारे सवालों का जवाब देगा। तुम पर अपना स्नेह बरसा कर तुम्हारी सारी तक़लीफ़ों को दूर करेगा।"

लक्ष्मीचन्द का कुतूहल और बढ़ गया। वह उस जगह गया जहाँ पर भगवान के सशरीर विराजमान होने की बात गृहिणी ने बताई। वहाँ पर बड़ी भीड़ जमा थी। सब लोग मौन बैठे थे। एक ऊँचे आसन पर दाढ़ी और मूँछवाले एक साधू जैसा व्यक्ति बैठा हुआ था। वह जनता को उपदेश दे रहा था कि सच्चे मार्ग पर चलो। जो लोग विपत्तियों में थे, उन्हें अपने निकट बुलाकर समझा रहा था कि उसने जनता के दुखों को दूर करने के लिए ही यह अवतार लिया है। बीच बीच वह व्यक्ति हवा में ही भभूत की सृष्टि करके लोगों पर छिड़क रहा था। जब-तब हवा में उड़कर थोड़े क्षण वैसे ही

यदि आप इस बच्चे में भगवान को नहीं देख पातीं तो किस भगवान को देखने आप जा रही हैं?"

इस पर उस गृहिणी ने खीझकर कहा–"इसीलिए तुम्हारी ज़िंदगी ऐसी हो गई है! यदि तुम्हें इसके भीतर सचमुच भगवान दिखाई देते हैं तो इसको संभाल लो। मैं भगवान के दर्शन करके लौटूंगी, तब तुम्हें भी खाना खिलाऊँगी।"

लक्ष्मीचन्द ने मान लिया, मीठी बातों तथा जादू के खेल दिखाकर उस बच्चे को भुलावे में रखा। गृहिणी ने लौटकर लक्ष्मीचन्द की तारीफ़ की और उसको भी खाना खिलाया।

रहता था। वह इस प्रकार अनेक प्रकार की महिमाएँ प्रदर्शित कर रहा था, इस पर भक्त उच्च स्वर में पुकार रहे थे–"हे परमात्मा! हमारा उद्धार करो।"

लक्ष्मीचन्द को यह सब विचित्र-सा प्रतीत हुआ। साधू ने जो विद्याएँ प्रदर्शित कीं, वे सब वह भी जानता था। मगर वह एक साधारण जादूगर ही रह गया और यह साधू भगवान बन बैठा है। इस रहस्य का पता लगाने के लिए लक्ष्मीचन्द दिन भर प्रतीक्षा करता रहा, अर्द्ध रात्रि के समय एकांत में उस साधू से मिला।

"तुम कौन हो?" साधू ने लक्ष्मीचन्द से पूछा।

"मैं एक जादूगर हूँ। मैंने आप के प्रदर्शन देखे हैं। उन्हें देख लोग महिमा मान रहे हैं। उन्हीं प्रदर्शनों को करते रहने पर भी मुझे भर पेट खाना मिलना मुश्किल प्रतीत हो रहा है। लोग आप को भगवान बता रहे हैं। उसी रहस्य का पता लगाने आया हूँ।" लक्ष्मीचन्द ने कहा। उसने उस दिन का अपना अनुभव भी साधू को बताया।

"इसमें रहस्य की कोई बात नहीं है कि मैं भगवान का अवतार हूँ! मुझे सहज रूप में जो शक्तियाँ प्राप्त हैं, उन्हें तुमने परिश्रम करके एक विद्या के रूप में सीख लिया है। तुम्हारे प्रदर्शन के लिए उपकरणों की आवश्यकता है। मेरे लिए उनकी जरूरत नहीं।" साधू ने जवाब दिया।

"ऐसी बात है! तब तो मैं अपनी उंगली काट लेता हूँ। क्या उसको आप फिर से चिपका सकते हैं?" लक्ष्मीचन्द ने पूछा।

"हाँ, जरूर कर सकता हूँ, क्यों नहीं?" साधू ने जवाब दिया। झट लक्ष्मीचन्द ने चाकू से अपनी उंगली काट डाली। इस पर साधू ने कटी उंगली को यथा स्थान पर रखकर कोई मंत्र पढ़ा। खून का बहना बंद हो गया और उंगली पहले जैसे हो गई।

"यह तो असंभव है! यह विद्या मेरे परिवारवालों को छोड़ कोई नहीं जानता।" लक्ष्मीचन्द गुनगुनाने लगा।

साधू ने चौंक कर पूछा–"तुम्हारा नाम लक्ष्मीचन्द है न!"

"जी हां; लेकिन आप कैसे जानते हैं?" लक्ष्मीचन्द ने पूछा।

"मैं तुम्हारे बड़े भाई हूँ। मेरा नाम रामभद्र है!" साधू ने लक्ष्मीचन्द की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देख कहा। लक्ष्मीचम्द चकित रह गया। उसके मुंह से बात न निकली।

साधू ने लक्ष्मीचन्द से यों कहा–"मैं तुम्हारे सवाल का अब सही जवाब देता हूं। तुमने एक छोटे बालक को अपने जादू के द्वारा भूख की याद भुला दी। वह बालक तुम में भगवान को देखता है। मगर बड़ों के बारे में ऐसी बात नहीं, मैंने अपने को भगवान बताकर जादू किया और भगवान बन बैठा। तुमने अपने को जादूगर बताकर जादू किया तो तुम केवल जादूगर ही रह गये। लोग मेरे और तुम्हारे भी जादू को देख रहे हैं। मगर उनमें संदेह पैदा नहीं होता। इस दुनिया में आराम से जीना है तो केवल मात्र विद्या पर्याप्त नहीं है। दूसरों को मीठी बातें सुनाकर उन्हें धोखा देना भी सीख जाओगे तभी तुम्हारी विद्या लोकप्रिय होगी। मैंने यही किया है। अपने को भगवान बता कर झूठ बोलना ही मेरी जीविका का आधार है। जब तक जनता मूर्ख बनी रहेगी, तब तक मेरे लिए किसी बात की कमी न होगी। अब तुम्हारा संदेह दूर हो गया है न? अब जा सकते हो।"

लक्ष्मीचन्द वहाँ से चला गया। इसके बाद उसका क्या हुआ, किसी को पता न चला। लेकिन यह समाचार आग की तरह सर्वत्र फैल गया कि विदर्भ देश की पूर्वी दिशा के एक छोटे से गांव में भगवान ने अवतार लिया है, वह अनेक महिमाएं प्रदर्शित कर रहा है और लोग दल बांधकर उसे देखने जाने लगे।

गुप्त मार्ग

एक राजा के दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र साहसी था। दूसरा कायर और हठी था। एक दिन दूसरे राजकुमार ने अपने पिता से पूछा–"मैंने सुना है कि बड़े-बड़े राजमहलों में गुप्त मार्ग होते हैं। क्या हमारे महल में हैं क्या?" पिता ने बताया कि अनेक मार्ग हैं। इस पर उसने उन मार्गों को देखने की इच्छा प्रकट की। "वे मार्ग मुझे तथा मंत्री को छोड़ और किसी को मालूम नहीं होने चाहिए। फिर भी उन मार्गों से तुम्हें क्या मतलब है?" राजा ने पूछा।

"मान लीजिए कि दुश्मन ने हम पर हमला किया है। तब मैं किसी की मदद के बिना भाग कर जा सकता हूँ न?" दूसरे पुत्र ने कहा।

राजा तुरंत उठ खड़ा हुआ। एक दर्वाजा खोल कर उसके पीछे की सीढ़ियाँ दिखाई। दूसरा राजकुमार वे सीढ़ियाँ उतर कर गुप्त मार्ग को देखने गया। राजा ने झट वह द्वार बंद किया।

थोड़ी देर बाद दूसरे राजकुमार ने आकर द्वार खटखटाया। "तुम जैसा कायर इस क़िले में रहने लायक़ नहीं है। उसी मार्ग से आगे बढ़ोगे तो पड़ोसी देश में पहुँच जाओगे। वहीं पर जिओ। तुम अपना चेहरा मुझे मत दिखाओ।" राजा ने कहा।

तीर्थयात्रा

महाराजा अंग न्याय और दया के लिए प्रसिद्ध था। एक बार उसके देश में महामारी फैल गयी ज़िसमें उसकी पत्नी और इकलौता पुत्र महामारी के शिकार हुए। इस भयंकर घटना से राजा विचलित हुआ और शासन के प्रति विरक्त रहने लगा। इस पर मंत्री तथा राजगुरु ने राजा को सलाह दी कि वह तीर्थयात्राएँ करके इस दुख को भूलने का प्रयत्न करे।

राजा अंग ने मान लिया। इसके बाद मंत्रियों ने राजा की तीर्थयात्रा के निमित्त पालकी और परिवार का भी प्रबंध करना चाहा, मगर राजा ने इसे अस्वीकार किया।

"मैं अकेला ही तीर्थयात्राएँ करूँगा। राजपरिवार को मेरे साथ चलने की जरूरत नहीं है।" राजा ने स्पष्ट शब्दों में कहा।

"आप राजपरिवार को छोड़कर चले जायेंगे तो आपके लौटने तक आपकी रक्षा कौन करेंगे? राजा के बिना राज्य का शासन कैसे चलेगा? इसलिए आप कृपया कोई न कोई प्रबंध करके जाइए।" मंत्रियों ने पूछा।

"मेरे लौटने तक मेरा छोटा भाई संग तुम लोगों का राजा बना रहेगा।" अंग ने समझाया।

यह बात सुनने पर सबके चेहरे मुरझा गये। मगर राजा अंग की दृष्टि उनके चेहरों पर न पड़ी। राजा यात्रा के लिए तैयार हो, अपने हाथ में एक लाठी लेकर एक साधारण यात्री की तरह राजमहल से चल पड़ा।

संग कुटिल स्वभाव का था। वह क्रूर और दुराचारी भी था। अधिकार का दुरुपयोग करनेवाला था। राजकर्मचारी

जब संपत तथा रघुपति मिले तब वे दोनों राजा को पहचान न पाये। राजा अंग ने जब अपने पुराने रहस्य बताकर अपनी दाग दिखाई, तब उस पर उनका विश्वास जम गया।

"मैं अब निश्चित रूप से बता सकता हूँ कि महाराजा को कोई पहचान नहीं सकता। मेरी योजना ज़रूर सफल होगी। रघुपति, आपने हमारे समर्थकों को संकेत के मिलते ही यहाँ पर आने के लिए तैयार कर रखा है न?" संपत ने पूछा।

"लोग आग के लगते ही विस्फोट होनेवाले तोपों जैसे तैयार बैठे हैं। यह बताओ कि तुम इस झंडे को कैसे राजमहल के भीतर ले जाना चाहते हो? भीतर जाते वक्त कड़ी जाँच-पड़ताल होती है न!" रघुपति ने कहा।

"मुझे अपने साथ एक सहायक को ले जाने की अनुमति प्राप्त है। महाराजा को मैं अपने सहायक के रूप में साथ ले जाऊँगा। मेरे भी लंबी दाढ़ी और मूँछें हैं, इसलिए हम दोनों की जोड़ी बराबर की रहेगी। यह सच है कि हमारे साथ ले जानेवाले उपकरणों की जाँच होती है। फिर भी भगवान हमारे सहायक रहें तो इस झंडे को मैं सब की आँख बचाकर भीतर ले जा सकता हूँ। इस झंडे को इस से थोड़े से बड़े एक ही प्रकार के दो बड़े कागज़ों के बीच रखकर कागज़ों के छोरों को चिपका दूँगा। ज़रूरत पड़ने पर झंडे की तहें ठीक हों, इसके लिए इस्त्री कर देता हूँ। अन्य ज़ादू के उपकरणों के बीच इसको देख कोई संदेह न करेगा।" संपत ने समझाया।
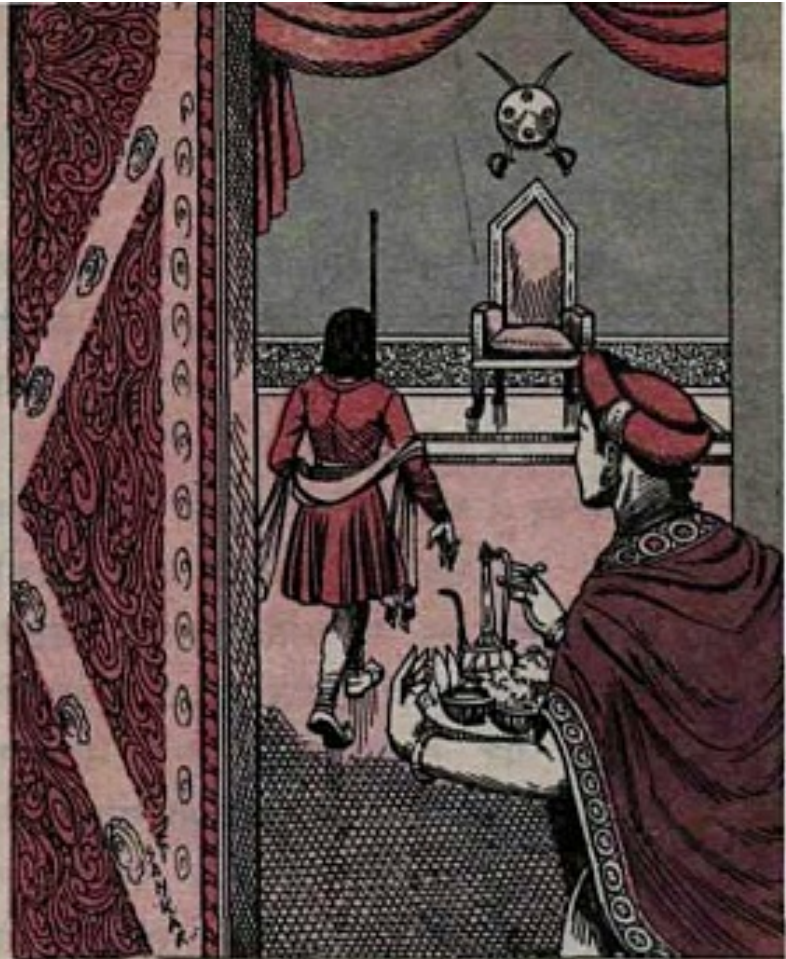
भगवान की कृपा से सारे कार्य ठीक से संपन्न हुए। कागज़ों के बीच में स्थित झंडे को किसी ने नहीं पकड़ा। गुप्त बैठक में दो जादूगर, भूतपूर्व मंत्री रघुपति के अतिरिक्त भूतपूर्व सुरक्षा मंत्री रणधीर और चार मंत्री उपस्थित थे। राज-प्रथा के अनुसार सब लोग बे हथियार थे।

सिंहासन के पीछे आड़े रखी दो तलवारें तथा एक ढाल थीं।

राजपुरोहित ने संग को भीतर ले जाकर दर्वाजे बंद किये। उसने मंत्र-पठन करके संपत को आदेश दिया कि वह अपना जादू प्रारंभ करे।

संपत ने झंडेवाले काग़ज़ को निकालकर उलट कर सब को दिखाया और उसको पोटली के रूप में लपेट दिया। उसके सहायक के रूप में स्थित महाराजा अंग ने दीवार पर लटकनेवाली एक तलवार निकाली, तलवार की नोक को पोटली के भीतर घुसेड़कर विचित्र ढंग से इधर-उधर हिलाया और बाहर खींचा। तलवार की नोक से पुराने झंडे को लटकते देख सब लोग विस्मय में आ गये।

इसके बाद जादूगर के सहायक ने सिंहासन के निकट जाकर उस झंडे को पताकास्तम्भ पर रखा और वह सिंहासन पर जा बैठा। उसने तलवार की नोक को संग की ओर बढ़ाकर कहा—"हे संग, मेरी कंठ-ध्वनि को सुनकर तुमने मुझे अब तक पहचान लिया होगा कि मैं कौन हूं? यदि तुम अपनी कुशल चाहते हो तो तत्काल आत्मसमर्पण कर दो, अन्यथा खतरे में पड़ जाओगे।"

संग अपने भाई के चरणों पर गिर पड़ा। संपत ने दीवार पर से दूसरी तलवार भी निकालकर पुरोहित की थाली में स्थित शंख को लेकर बजाया। बाहर प्रतीक्षा करनेवाली जनता के लिए यह विजय का संकेत था। महाराजा अंग के प्रति विश्वास रखनेवाले राजमहल के रक्षक जनता में मिल गये। जनता ने आकर दर्वाजा खटखटाया। रघुपति ने द्वार खोल दिये।

"महाराजा अंग की जाय!" नारे लगाते जनता ने अंग को दरबार तक उठा ले जाकर सिंहासन पर बिठाया। संग तथा उसके दुष्ट अनुचरों के हाथों में हथकड़ियाँ लगाई गईं। उनके पीछे रक्षक भट पहरे पर खड़े हो गये। इस प्रकार राजा अंग पुनः उस राज्य का राजा बना।

ये सारी बातें जानते थे, किंतु महाराजा अंग के निर्णय के विरुद्ध वे कुछ बोल न पाये।

संग ने गद्दी पर बैठते ही सभी पुराने मंत्रियों को अपने पदों से हटाया और राजा अंग के विश्वासपात्र राजकर्मचारियों को भी ऊँचे पदों पर से निकाल दिया। उनकी जगह संग के अनुचर आसीन हुए और शासन कार्यों में मनमाने ढंग से भयंकर अत्याचार करने लगे। संग के कुछ अनुचर जनता के घरों में प्रवेश करके इस बात का पता लगाते कि किन किनके घरों में धन और सुंदर युवतियाँ हैं। इसका पता लगवा कर संग खुद उन घरों में जाता और उनकी संपत्ति तथा बहू-बेटियों पर क़ब्जा कर लेता। उसने देश की प्राकृतिक संपत्ति को विदेशों में निर्यात करके अपने तथा अपने अनुचरों के पीने लिए विदेशी शराब मँगवा लेता। करों का भार इतना बढ़ गया था जिससे तंग आकर देश के असंख्य किसान पड़ोसी देशों में भाग गये। इसी प्रकार शिल्पी, चित्रकार, अन्य कलाकार तथा पेशेवर लोग भी भाग गये। केवल असहाय तथा देशप्रेमी मात्र उस देश में रह गये। मगर राजा संग के शासन में उन्हें किसी प्रकार की सुरक्षा या मानसिक शांति न थी। खेत सब ऊसर और बंजर बन गये। सोना भेजकर विदेशों से खाद्य पदार्थ मँगाने पड़े। सुख-भोग की आवश्यक चीजें मँगाने के लिए देश की सारी संपत्ति विदेशों को निर्यात करनी पड़ी।

संग के सलाहकारों में अधिकांश विदेशी थे। शीघ्र ही उन लोगों ने ना जायज फ़ायदा उठाकर अपार धन का संपादन किया। उन लोगों ने संग को सलाह दी कि वह और कड़ाई के साथ शासन करे और सुख भोगे।

"आप सम्राट हैं! आपको समस्त प्रकार के सुख भोगना चाहिए।" मित्रों ने सलाह दी।

"मैं केवल राज प्रतिनिधि हूँ। वास्तविक राजा तो मेरे बड़े भाई अंग हैं न!" संग ने उत्तर दिया। उसके मन में अपने बड़े भाई के प्रति अपार श्रद्धा एवं आदर की भावना थी।

"महाराज! आप जैसे मूर्ख दूसरे कोई न होंगे। एक बार गद्दी पर बैठने से समस्त अधिकार उन्हीं के हो जाते हैं। आप जो चाहे सो कर सकते हैं। यदि आप अपने बड़े भाई को मृत्यु का दण्ड देना चाहे तो भी दे सकते हैं।" सब ने समझाया।

ये बातें सुन संग आपादमस्तक कांप उठा और अपने कानों में उंगलियाँ रखकर बोला—"नहीं, नहीं! मैं ऐसा पाप कभी नहीं कर सकता। तुम लोग मुझ को गलत रास्ते पर खींचने की कोशिश मत करो।"

"यह तो कायरता है। ऐसी दुर्बलता को मन में स्थान नहीं देना चाहिए। आप ही सोचिए, राजा अंग के लौटते ही आपके ये सारे वैभव जाते रहेंगे। आप से बात करनेवाला तक न होगा। जब आपके हाथ में अधिकार न होगा, तब आपको पूर्ण स्वतंत्रता भी न होगी। इन सबसे भातृप्रेम नामक दुर्बलता क्या बड़ी चीज़ होती है?" सबने ज़ोर दिया।

संग सर पर हाथ रखकर विकल हो गद्दी पर से उतरते हुए बोला—"अब मैं बिलकुल सोचने की हालत में नहीं हूँ; तुम लोग जो उचित समझते हो, सो करो।"

इसके उपरांत अंग का वध करने का आदेश निकला।

भूतपूर्व मंत्री रघुपति बड़ी सजगता के साथ संग के कार्यकलापों पर निगरानी रखे हुए था। उसने सारी बातें जान लीं, उसने अपने डाक-कबूतरों के द्वारा यह समाचार महाराजा अंग के पास भेजा। यह वृत्तांत जानकर अंग मन ही मन मुस्कुराया।

तीर्थयात्राएँ करने के कारण राजा अंग की मानसिक चिंता जाती रही। जीवन

के प्रति उसके मन में पुनः ममता जगी। उसके मन में फिर से अपने देश और प्रजा के प्रति प्रेम का भाव जाग उठा और अपने देश में लौटने की कामना बलवती हो उठी। वह लौटकर राजधानी में आना ही चाहता था, तभी कबूतरों के द्वारा संग का समाचार विदित हुआ। उसने कबूतरों के द्वारा ही मंत्री रघुपति से पत्र-व्यवहार किया। उसे संग के दुष्कृत्य साफ़ मालूम हुए।

धूप में सूखकर, वर्षा में भीगकर, जाड़े में सिकुड़ कर राजा अंग का शरीर बिलकुल बदल गया था। साल भर उसकी दाढ़ी और मूँछें बढ़ गई थीं, बाईं कांख के नीचे जो बड़ी लाल दाग थी, उसे कोई अगर न देखे तो राजा को पहचानना भी मुश्किल था।

इस बीच संग के परिवार में से कोई राजा अंग का पता न लगा पाया। एक उत्साही युवक ने किसी श्मशान में दफ़नाये गये किसी मनुष्य का सिर काट लिया, उसे लाकर राजा संग के दरबार में दिखाकर बताया कि यही राजा अंग का सिर है। वह सिर पहचानने की स्थिति में न था। संग भी शराब के नशे में मदहोश था। इसलिए उस युवक को पुरस्कार दे भेज दिया। संग के मंत्री ने बताया कि संग का राज्याभिषेक करने के लिए अब कोई रोक-टोक नहीं है। संग ने भी सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

संग के राज्याभिषेक की भारी पैमाने पर तैयारियाँ शुरू हो गईं।

उस देश में राज्याभिषेक के समय एक गुप्त तंत्र नियमानुसार संपन्न किया जाता रहा है। उसमें जादूगरों के परिवार का प्रधान व्यक्ति भाग लेता है। (इन जादूगरों का वंश उस समय से उस देश में चला आ रहा था, जब से आज का राजवंश शासक बन बैठा था) जादू का प्रदर्शन राजमहल के भीतरी कक्ष में अभिषेक के सिंहासन के स्थान पर ही होता है। उस सिंहासन के बाजू में एक पताकाध्वज होता है। जादू के प्रदर्शन के समाप्त होते ही राजा नगर के प्रमुख नागरिकों के सामने अति प्राचीन रेशमी झंडे को उठाकर सिंहासन पर बैठता है। यही गुप्त तंत्र है।

मगर इस वक्त वह प्राचीन रेशमी झंड़ा दिखाई न दे रहा था। इसलिए उसी प्रकार का एक और झंडा बनाया गया। जादूगरों का प्रमुख संपत नामक व्यक्ति सत्तर वर्ष का वृद्ध था। जादूगर के वंश के लोग बड़े ही राजभक्त थे। पर होशियार भी थे। इस कारण उनके मन में राजा अंग के प्रति आदर भाव के होते हुए भी प्रकट रूप में संग के प्रति आदर भाव का अभिनय करके उसके विश्वास पात्र बन गये थे।

राज्याभिषेक के एक दिन पूर्व महाराजा अंग एक यात्री के रूप में राजधानी नगर में पहुँचा। नगर के मंदिर में प्रति नित्य अनेक यात्री आया करते हैं। कबूतरों की डाक के द्वारा पहले ही उन लोगों ने जो योजना बनाई थी, उसके अनुसार राजा अंग ने उस रात को संपत के घर में प्रवेश करके बिताया।

गुप्त तंत्र में भाग लेने के लिए जाते वक्त संपत ने अपने साथ राजा अंग तथा रघुपति के पास गुप्त रूप में स्थित असली झंडे को भी ले जाने का प्रबंध किया। महाराजा अंग से गुप्त रूप में

सच्चा बंटवारा

एक किसान के दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र होशियार था और दूसरा भोला था। किसान ने मरते वक्त गाँव के बड़े बुजुर्गों के सामने कहा कि अपना बड़ा पुत्र तीन हज़ार गज घेरे वाली ज़मीन को लेकर बाक़ी ज़मीन छोटे को दे और यह बंटवारा न्यायाधिकारी के समक्ष हो।

अपने पिता के मरने पर बड़े पुत्र ने खेत के घेरे को माप कर देखा, वह सिर्फ़ तीन हज़ार गज ही निकला। उसने छोटे से कहा—"यह सारा खेत मेरा है, तुम्हें इस में से कुछ भी नहीं मिलेगा।"

छोटे ने न्यायाधिकारी के पास जाकर अपने पिता और भाई के वचन सुनाये।

न्यायाधिकारी दोनों भाइयों को लेकर खेत पर पहुँचा। खेत के चारों ओर माप कर देखा, ठीक तीन हज़ार गज ही थे। इस पर न्यायाधिकारी ने उस खेत को आड़े और सीध में चार भागों में विभाजित किया। एक के सामने एक कर्णरेखा के ढंग के दो भागों को बड़े को और बाक़ी दो भागों को छोटे को दिया।

दोनों के खेत तीन हज़ार गज के घेरेवाले निकले।

विवाह का वैभव

एक गाँव के बीच में एक पुराना राम मंदिर था। रामशास्त्री उसका पुजारी था। उस गाँव का यह रिवाज़ था कि यदि गाँव का कोई व्यक्ति मर जाय तो तीन दिन तक मंदिर में पूजा-अर्चना न करे और मंदिर के द्वार बंद रखे।

गाँव के थोड़ी दूर पर एक छोटा शहर था। उस में जाकर हाट के दिन लोग दाल-नमक आदि चीजें खरीद कर लाते थे। एक दिन हाट में अपने लिए आवश्यक सारी चीजें खरीद कर रामशास्त्री उन्हें गाड़ी में लदवा रहा था तभी सामने के महल में से एक बनिये ने शास्त्री को पुकारा। रामशास्त्री ने बनिये से मिल कर हालत जान ली।

वह हालत यह थी कि पिछले महीने में बनिये की पत्नी सख्त बीमार पड़ी। इस पर बनिये ने यह मनौती की थी कि यदि उसकी पत्नी चंगी हो जाएगी तो एक हज़ार एक सौ सोलह रुपये खर्च करके वैभव के साथ वह राजचन्द्रजी के विवाह का उत्सव मनाएगा। बनिये की पत्नी चंगी हो गई थी।

"मैं समय पर तुम्हारे गाँव आना चाहता था, पर कभी फ़ुरसत ही नहीं मिली। कल शाम को मैं अपनी पत्नी के साथ तुम्हारे गाँव आ जाऊँगा। तुम सारे प्रबंध करके तैयार रहो। परसों भगवान के विवाह का उत्सव मनवा कर गरीबों में अन्न बांटेंगे।" बनिये ने कहा।

यह बात सुनने पर रामशास्त्री फूला न समाया। उसके समय में इतने भारी पैमाने पर किसी ने भगवान का विवाहोत्सव मनवाया नहीं था।

"आप आ जाइए। मैं सारे प्रबंध कर देता हूँ।" यों बनिये से कहकर

आर. एस. गोयल

खुशी-खुशी रामशास्त्री अपने गाँव लौट आया।

रामशास्त्री के घर लौटते लौटते अंधेरा हो चला था। गाड़ी में से सामान उतरवाकर गाड़ी को भेज दिया, घर के भीतर जाते हुए उसने देखा कि चबूतरे पर कोई लेटा हुआ है।

"कौन है?" शास्त्री ने ज़ोर से पुकारा। पर कोई जवाब न आया। शास्त्री की आवाज़ सुनकर उसकी पत्नी कांतामणि बाहर आई और अपने पति से बोली–"यह कमबख्त अभी तक नहीं गया है? आप अन्दर आ जाइए, बता देती हूँ।"

शास्त्री ने भीतर प्रवेश करते ही पूछा–"अरी, यह कौन है?"

"कोई गुंडा मालूम होता है। शाम को आया, खाना खिलाने का हठ किया। मैंने इनकार किया, इस पर जिद करके वह चबूतरे से चिपका पड़ा है। देखने में वह चोर मालूम होता है। उसको भगा दीजिए।" कांतामणि ने समझाया।

"भोजन करने के बाद उसकी बात सोचेंगे। आज हमारा भाग्य खुल गया है!" इन शब्दों के साथ शास्त्री ने बनिये का वृत्तांत सुनाया और कहा–"किसी भी हालत में पांच सौ रुपये बचा सकते हैं। साथ ही हम दोनों को ज़रूर नये वस्त्र देंगे।"

कांतामणि ने अपने पति को भोजन कराया। शास्त्री भोजन समाप्त कर सोने की बात सोच रहा था, तभी कांतामणि ने खिड़की में से बाहर झांक कर कहा–"वह दुष्ट अभी तक चतूबरे पर पड़ा हुआ है। उसको यहाँ से भिजवादीजिए, वरना रात में वह पिछवाड़े से घर में घुस आएगा।"

लाचार होकर शास्त्री ने कोने में पड़ी लाठी उठाई, दर्वाजा खोल दिया। तब ज़ोर से चबूतरे पर लाठी चलाते हुए चिल्लाया–"अबे, कौन है! यहाँ से चले जाओ। हिलते क्यों नहीं?"

मगर चबूतरे पर लेटा हुआ व्यक्ति हिलता-डुलता न था।

शास्त्री के मन में कोई संदेह हुआ। उसने निकट जाकर हिला कर देखा। उस आदमी में कोई चेतना न थी।

"अरी, घर डूब गया। शायद यह मर गया है।" शास्त्री चीख उठा।

"मर गया तो अपनी बला सें! हमारा पिंड छूट गया! आप अन्दर आ जाइए।" कांतामणि ने कहा।

शास्त्री ने भीतर प्रवेश करके कहा– "तुम भी बेवकूफ़ हो। अब हमारा दीवाला निकल जाएगा। इसके मरने पर तीन दिन तक मंदिर को बंद करना पड़ेगा। बनिया परसों भगवान का विवाहोत्सव मनाने वाला है! उसकी क्या बात होगी! न मालूम फिर उसे कब फ़ुरसत मिलेगी?"

"तब तो अब हम क्या करें?" कांतामणि ने पूछा।

"इस को आज रात ही रात श्मशान में दफनवा देना है। यह हमारे गाँव केलिए नया है। इसलिए कोई इसकी खोज-खबर न करेगा!" शास्त्री ने कहा।

"यह बात कम से कम श्मशान को पहरेदार को तो मालूम हो जाएगी।" कांतामणि ने कहा।

"रुपये देंगे तो उसका मुंह बंद हो जाएगा।" इन शब्दों के साथ अनेक दिनों से बचाये गये सौ रुपये निकाला। कमर में खोंसकर प्रकट रूप में हिम्मत करके अंधेरे में ही श्मशान की ओर चल पड़ा।

श्मशान का पहरेदार श्मशान के पास ही एक झोंपड़ी में रहा करता था। शास्त्री ने उसको बाहर बुलाकर सारा समाचार सुनाया और कहा–"यह बात तीसरे के कानों में मत पड़े, याद रखो।"

शास्त्री के कहे अनुसार करने के लिए पहरेदार ने सौ रुपये की माँग की, मगर मोल-भाव करके शास्त्री ने उसको पचहत्तर रुपयों में मनवाया–"मैं अभी जाकर शव

को ला देता हूं। इस बीच तुम गड्ढा खोदकर तैयार रखो।" यों कहकर वह घर की ओर चल पड़ा।

कांतामणि ने एक चटाई दी। शास्त्री ने उस आदमी को चटाई में लपेट दिया, उसे सर पर उठाकर चल पड़ा। आधी दूर चलने पर शास्त्री थक गया। इधर-उधर देख जान लिया कि कोई आ नहीं रहा है, उस बोझ को उतारकर एक चबूतरे पर रखा और हाँफते खड़ा रहा।

इतने में शास्त्री के कंधे पर किसी ने हाथ रखा। शास्त्री चीखने को हुआ, लेकिन संभल गया।

"ओह! शास्त्रीजी हैं, इस आधी रात के वक़्त कहाँ के लिए चल पड़े?" उस व्यक्ति ने पूछा। उसने शास्त्री के मुंडे हुए सिर को टटोल कर पहचान लिया था।

वह कंठ एक शराबी का था।

"नींद नहीं आ रही थी, यों ही चल पड़ा।" शास्त्री ने जवाब दिया।

"तो फिर हाँफते क्यों हैं? यह क्या? चटाई की लपेट मालूम होती है। इसमें शायद कोई चीज है!" शराबी कहता जा रहा था।

"हाँ, हाँ, लगता है, आज तुम शराब की दूकान में नहीं गये हो!" शास्त्री ने डर के मारे पूछा।
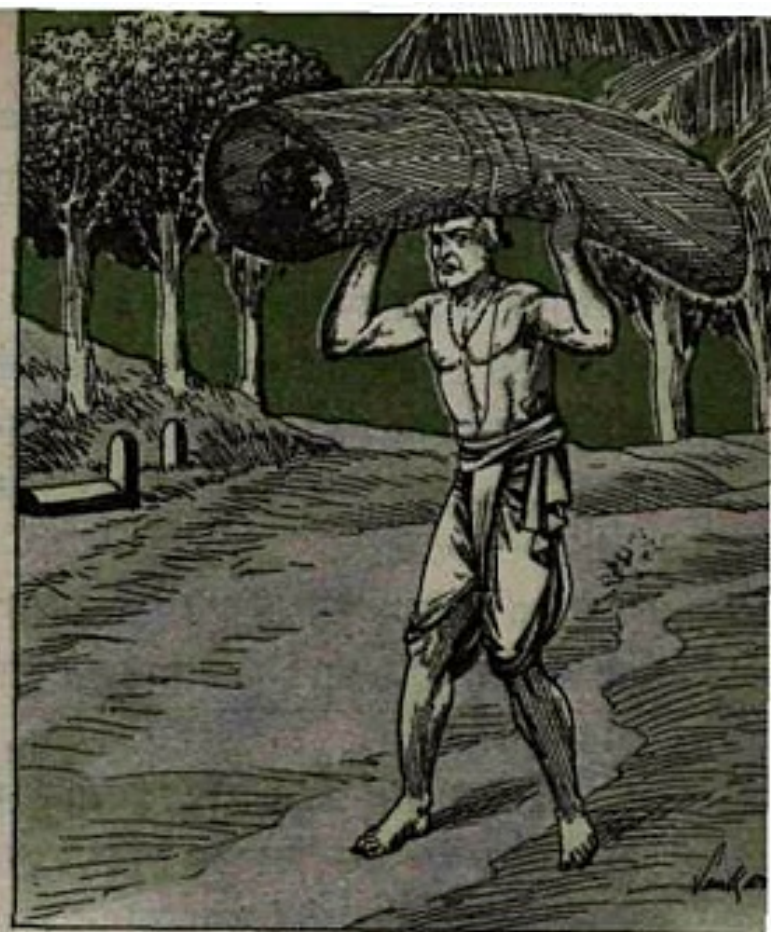
"शराब के दूकानदार को पच्चीस रुपये का कर्ज देना है। उसे चुकाये बिना उसने शराब देने से इनकार किया है।" शराबी ने जवाब दिया।

शास्त्री ने चट से कमरे में खोंसे गये पच्चीस रुपये निकाले और कहा-"लो, ये पच्चीस रुपये! जल्दी शराब की दूकान के पास हो आओ।"

शराबी का पिंड छूट गया।

शास्त्री ने संतोष की सांस ली। जल्दी-जल्दी चलते श्मशान में पहुँचा। पहरेदार गड्ढा खोदकर तैयार था। शास्त्री चटाई की लपेट को उतारने जा रहा था, तभी वह धम्म से गड्ढे में गिर गई।

"बाप रे बाप! मर गया!" यों चिल्लाकर चटाई की लपेट में से कोई आदमी बाहर आया।

शास्त्री का कलेजा काँप उठा।

"पगले पंडितजी! क्या जिंदा आदमी को गाड़ने के लिए आये हो?" इन शब्दों के साथ पहरेदार ठठाकर हँस पड़ा।

"इस वक़्त मैं कहाँ हूँ? मैं घोड़े बेचकर सो जाता हूँ।" चटाई में से निकलने वाले आदमी ने पूछा।

"जानते हो, कहाँ हो? श्मशान में हो!" शास्त्री उस पर टूट पड़ा। वह व्यक्ति घबरा गया और लगा भागने।

इसके बाद शास्त्री ने पहरेदार से रुपये वापस लेना चाहा, मगर उसने सारी पोल खोलने की धमकी दी। शास्त्री अपना सा मुँह लेकर घर लौट आया। इस बीच कांतामणि सो गई थी। उसने एक सपना देखा था कि शास्त्री ने उसे रेशमी साड़ी खरीद कर दी है।

शास्त्री ने उसे हिम्मत बंधाई—"परसों इस वक़्त तक तुम्हारा सपना साकार होगा।"

लेकिन दूसरे दिन शाम को बनिया अपनी पत्नी के साथ नहीं लौटा, तीसरे दिन भी उसका पता नहीं था।

चार दिन तक बनिये का इंतज़ार करके पाँचवें दिन शास्त्री स्वयं बनिये के घर पहुँचा। उसी वक़्त बनिया कहीं से घर लौटा था। शास्त्री को देखते ही बोला—"पंडितजी! आइए! मैं ही आप को खबर भेजना चाहता था। आप जिस दिन मुझ से मिले थे, उसी दिन मुझे समाचार मिला कि मेरी नानी की तबीयत ठीक नहीं है। गाँव तो बहुत दूर था, मगर मुझे जाना ही पड़ा। इस वक़्त उसकी तबीयत ठीक है। मैंने सोचा कि बड़ी दूर चला आया हूँ, क्यों न यहीं पर अपनी मनौती पूरी कर लूँ! और वहीं मैंने अपनी मनौती पूरी कर ली।"

भगवान के विवाह की बात चाहे जो हो, शास्त्री का विवाह तो हो गया।

गजपुस्पीलता को सुग्रीव ने अपने कंठ में लपेट लिया, तब रामचन्द्रजी उसको साथ ले किष्किंधा की ओर चले। उनके हाथ धनुष और बाण थे। रामचन्द्रजी के आगे सुग्रीव तथा लक्ष्मण चले। उनके पीछे वीर हनुमान, नल, नील वगैरह चल पड़े।

रास्ते में घने वृक्षों से भरा एक महान अरण्य रामचन्द्रजी को दिखाई दिया। उन्होंने सुग्रीव से उस जंगल के बारे में पूछा।

सुग्रीव ने चलते हुए यों कहा—"वह जंगल एक समय में आश्रम था। ठण्डी छायावाले वृक्षों, स्वादिष्ट कंद, मूल तथा फलों से भरा रहता था। उसमें सप्त जन नामक ऋषि तपस्या करके शरीरों के साथ स्वर्ग गये हैं, इस वक़्त उस जंगल में कोई प्रवेश नहीं कर सकता। पक्षी तथा जानवर भी प्रवेश नहीं कर सकते। अगर भीतर गये भी, तो बाहर नहीं आ सकते। उसमें से अप्सराओं के द्वारा नृत्य करने तथा गाने की ध्वनियाँ सुनाई देती रहती हैं। सुगंध भी निकला करती है। वृक्षों के अग्र भाग पर धुएं की निशानी दिखाई दे रही है, उसका कारण यह है कि उसमें से सदा त्रेताग्नियाँ प्रज्वलित होती रहती हैं।"

ये बातें सुन राम और लक्ष्मण ने सप्त जनों का स्मरण कर उस अरण्य को प्रणाम किया। वहाँ से बहुत दूर चलकर वे

किष्किंधा के समीप गये और पेड़ों की ओट में छिप गये।

सुग्रीव ने एक बार चारों ओर नज़र दौड़ाई, ऊँचे स्वर में वाली को युद्ध के लिए पुकारा। इसके बाद उसने रामचन्द्रजी से कहा कि वे इस बार ही सही अवश्य अपने वचन का पालन करें।

"तुम्हारे कंठ में गजपुष्पी लता है। इसलिए मैं तुमको आसानी से पहचान सकता हूँ। मैं एक ही बाण से वाली का वध करूँगा। तुम डरो मत। मैं बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी झूठ नहीं बोला। भविष्य में भी झूठ न बोलूँगा। तुम इस बार वाली को जोर से पुकारो।" रामचन्द्रजी ने कहा।

सुग्रीव इस प्रकार गरज उठा जिस से आसमान भी गूंज उठे। उस ध्वनि को सुन जानवर सब घबरा उठे। जंगल में संचार करनेवाले हिरण चट से रुक गये।

उस सिंहनाद को अंतःपुर में से वाली ने सुना। वाली को इस बात का बड़ा क्रोध आया कि उसको देख थर-थर कांपने वाले सुग्रीव में ऐसी हिम्मत कहाँ से आ गई। वह झट युद्ध के लिए तैयार हो चला आया।

अंतःपुर से चलने वाले वाली के साथ तारा ने आलिंगन कर उसको रोका और कहा—"क्या सुग्रीव का वध करने के लिए इस रात के वक़्त तुम्हें जाने की ज़रूरत है? सवेरा हो जाने पर जा सकते हो!
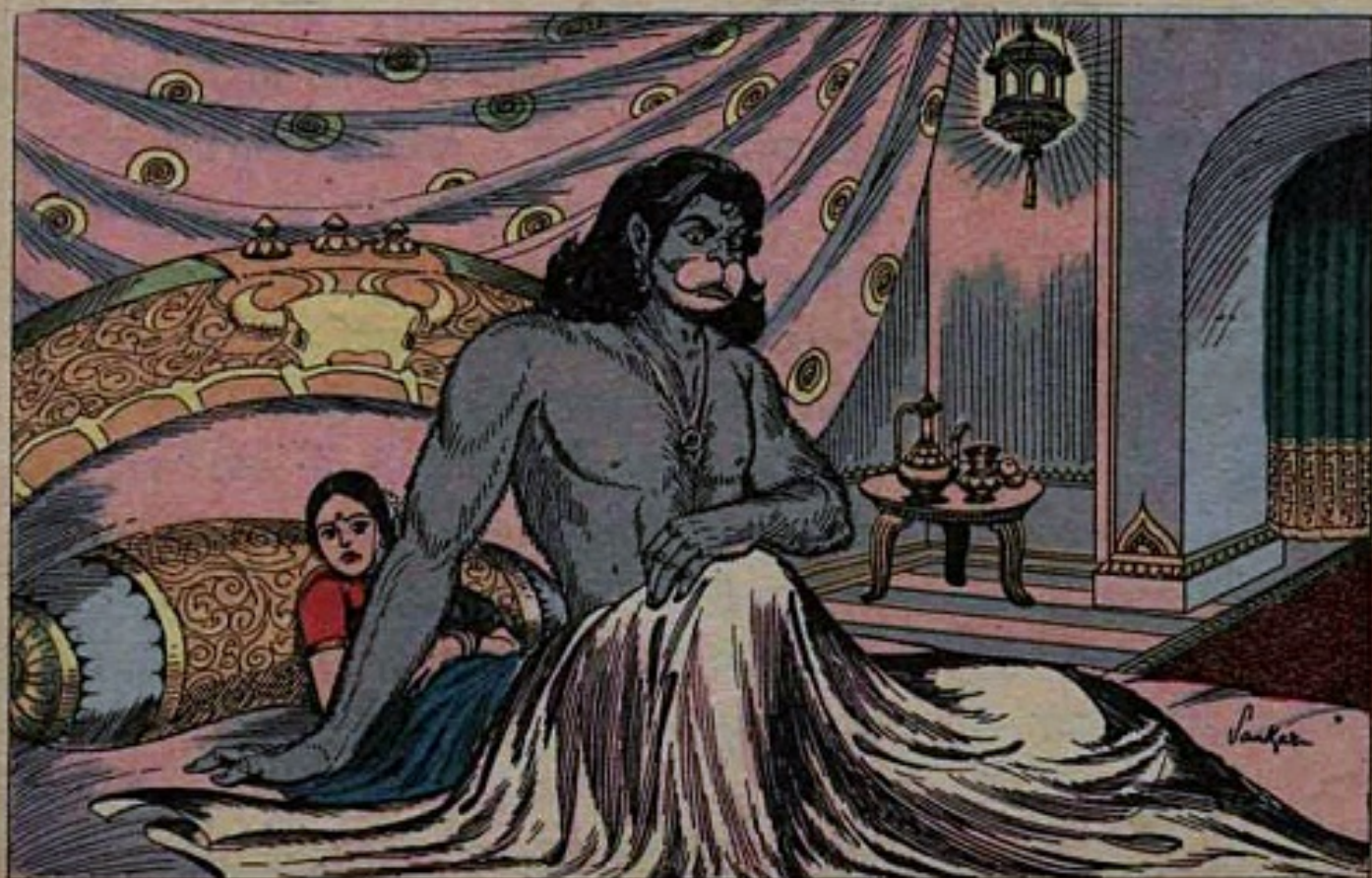
इस में पौरुष का कोई प्रश्न नहीं है। वह तुम्हारे समान बल रखने वाला नहीं है। मैं किस लिए तुमको इस वक़्त रोक रही हूँ, इसका कारण बताऊँगी। एक बार तुम से मार खाकर भाग जानेवाले व्यक्ति फिर से तुमको ललकार रहा है, तो इसका मतलब यही होगा कि उसे किसी की सहायता प्राप्त हुई होगी। वरना वह तुमको युद्ध के लिए नहीं ललकारता। तुम यह मत सोचो कि 'उसे चाहे किसी की सहायता प्राप्त हो, मैं उसका वध करूँगा।' सुग्रीव बड़ा ही अक़्लमंद है। अपनी सहायता करने आगे आनेवालों के बल एवं पराक्रमों की परीक्षा लिये बिना वह आगे न आएगा। तुम से भी अधिक पराक्रमी की सहायता लेकर आया होगा। अंगद जंगल से अभी एक समाचार लाया है। सुनते हैं कि इक्ष्वाकुवंशी, दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ऋश्यमूक पर्वत पर आये हुए हैं। महाबली एवं पराक्रमी वे दोनों भाई सुग्रीव की सहायता करनेवाले हैं। रामचन्द्र ने विराध, खर, दूषण और कबंध का वध किया है।"

इसके बाद तारा ने वाली को यों सलाह भी दी–"सुनो, रामचन्द्र से वैर मोल लेने की अपेक्षा सुग्रीव के साथ मैत्री करो। उसको बुलवा कर फिर उसे युवराजा बना दो। वह तो कोई पराया नहीं, तुम्हारा सगा भाई है! यह समझ

लो कि मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही यह बात कहती हूं।"

मगर तारा की बातों पर वाली ने कान न दिया। उसने तारा से यों कहा: "एक ओर मुझ को सुग्रीव युद्ध के लिए ललकार रहा है तो क्या मैं उसके आगे सर झुकाऊं? तुम कायर हो। कुछ नहीं जानती हो! महान वीरों को युद्ध में पीठ दिखाने के बदले मरना कहीं बेहतर है। तुम राम के बारे में डरो मत। वह मुझ निरपराधी का वध करके पाप का भागी न होगा। तुमने मेरी भलाई के लिए ही ये सारी बातें कहीं। तुम मेरे साथ मत आओ। मैं सुग्रीव का घमण्ड चूर कर डालूंगा, मगर उसका वध न करूंगा, मेरी चोटों से थर्राकर वही भाग जाएगा।"

तारा और अधिक समझा न सकी, उसने वाली की परिक्रमा की। युद्ध में उसकी विजय के लिए मंत्र पढ़े, तब अपनी सखियों के साथ लौट गई।

इसके बाद वाली ने आगे बढ़कर युद्ध के लिए सन्नद्ध सुग्रीव को देखा। उसने भी सुग्रीव की भांति कमर कस ली। तब मुट्ठी बांध कर सुग्रीव पर हमला कर बैठा। सुग्रीव भी मुट्ठी बांध कर वाली से जूझ पड़ा।

दोनों ने परस्पर मुक्कों का प्रहार किया; सुग्रीव ने एक साल वृक्ष उखाड़ कर वाली पर प्रहार किया। उसकी चोट खाकर वाली थोड़ा विचलित हुआ। मगर धीरे-धीरे वाली के बल की अपेक्षा सुग्रीव का बल क्षीण होता गया।

सुग्रीव का बल के घटने तथा बीच बीच में उसका इधर-उधर ताकते देख राम ने वाली का वध करने के लिए उचित बाण का चुनाव किया, अपने धनुष पर चढ़ाकर कान तक खींच कर छोड़ दिया। वह बाण बड़ी ध्वनि के साथ जाकर वाली की छाती में चुभ गया। उसके आघात से चकरा कर वाली गिर गया।
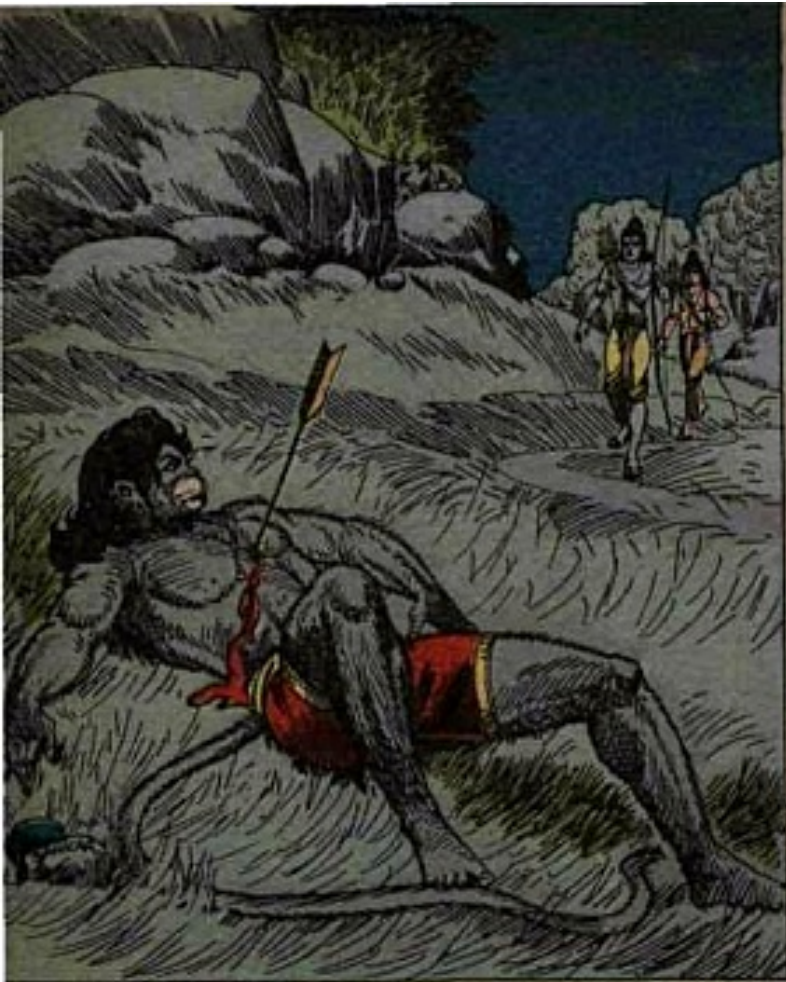
इंद्र के द्वारा प्रदत्त 'कांचन माला' वाली के कंठ में पड़ी थी, इसलिए तत्काल उसके प्राण उड़ नहीं गये। वह अपने ऊपर बाण का प्रहार करनेवाले की खोज कर रहा था। तभी रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ वहाँ पर आ पहुँचे। इस पर वाली ने रामचन्द्र को देख यों कहा:

"हे रामचन्द्रजी! आप महाराजा के पुत्र हैं। चरित्रवान के रूप में प्रसिद्धि पा चुके हैं! उत्तम वंश में पैदा हुए हैं। बल एवं पराक्रम रखते हैं! आप ने मेरे द्वारा किसी के साथ युद्ध करते समय मेरी छाती पर बाण का प्रहार किया, इस से आप का बड़प्पन कैसे ज्यादा हुआ? मैं बिलकुल नहीं जानता था कि आप छिपे रहकर मुझ पर बाण चलायेंगे। राजाओं के लिए इंद्रिय-निग्रह, पवित्र हृदय, सहनशीलता, सत्य-धर्म, पराक्रम तथा दुष्टों को- दण्ड देनेवाले गुण, ये सब आप के भीतर हैं, इस विश्वास के साथ तारा के मना करने पर भी मैं युद्ध के लिए सन्नद्ध हो चला आया। मैं समझ नहीं पाया कि आप दुर्बुद्धि रखते हैं; पाप का आचरण करते हैं और दुनिया को धोखा देनेवाले हैं। मैंने आप के तथा आप के देश के साथ भी कोई अपकार नहीं किया। न आप का अपमान ही किया है। न मैं आप के साथ युद्ध करने आया! किसी दूसरे के साथ युद्ध करनेवाले मुझ को आप ने क्यों मारा? हम यह भी समझ नहीं पाते कि आप ने शिकारी धर्म से मुझ पर बाण चलाया है। मेरे चमड़े, रोम, हड्डियाँ तथा मांस आप के किसी काम के नहीं हैं; आप जैसे राजा के द्वारा पृथ्वी का शासन ठीक से न चलेगा। आप जैसे पापी और कुटिल व्यक्ति महाराजा दशरथ के घर कैसे पैदा हुए? यदि कोई आप से पूछेंगे कि आप ने ऐसा काम क्यों किया है? इसका क्या उत्तर देंगे? आप ने अपना यह पराक्रम मुझ पर क्यों दिखाया? आप के साथ द्रोह करनेवाले उस रावण पर दिखा

देते? यदि आप ने मेरे सामने खड़े युद्ध किया होता तो अब तक आप को काल के यहाँ भेज दिया होता। यदि आपने मुझ से कहा होता तो एक ही दिन के अन्दर सीताजी को ढूंढ लाकर आप को सौंप दिया होता। मेरा वध कराकर सुग्रीव का वानर राजा बन जाना सहज ही है, मगर आड़ में छिपे रहकर आप के हाथों से मेरा वध करना अन्याय है।"

यों कहकर वाली क्रमशः बेहोश होने लगा, तब रामचन्द्र ने समझाया—"तुम ने धर्म के मर्म को जाने बिना मेरी निंदा की। यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशियों का राज्य है। इसका राजा भरत है। उसके आदेश पर हम धर्म की रक्षा करते हुए संचार कर रहे हैं। तुम धर्म से च्युत हो गये हो। छोटा भाई पुत्र के समान है। तुमने अपने छोटे भाई की पत्नी रुमा को हड़प लिया है। उस अपराध के लिए तुम इस रूप में दण्ड भोग रहे हो! अलावा इसके मेरे लिए सुग्रीव लक्ष्मण जैसे है। उसकी मैत्री के वास्ते भी मैंने यह काम किया है। मेरे हाथों द्वारा तुम्हारा वध करना किसी भी दृष्टि से अधर्म नहीं हो सकता। आड़ में रहकर मैंने तुम पर बाण चलाया, इस के लिए मैं जरा भी चिंता नहीं कर रहा हूं। जंगल के जानवरों का वध करनेवाले लोग छिपे रहकर जाल बिछाने जैसे अनेक मायाजालों को काम में लाते हैं। खानेवाले जानवरों का ही नहीं, अपितु न खानेवाले जानवरों का भी राजर्षि वध करते हैं। तुम न खाने योग्य जानवर हो।"
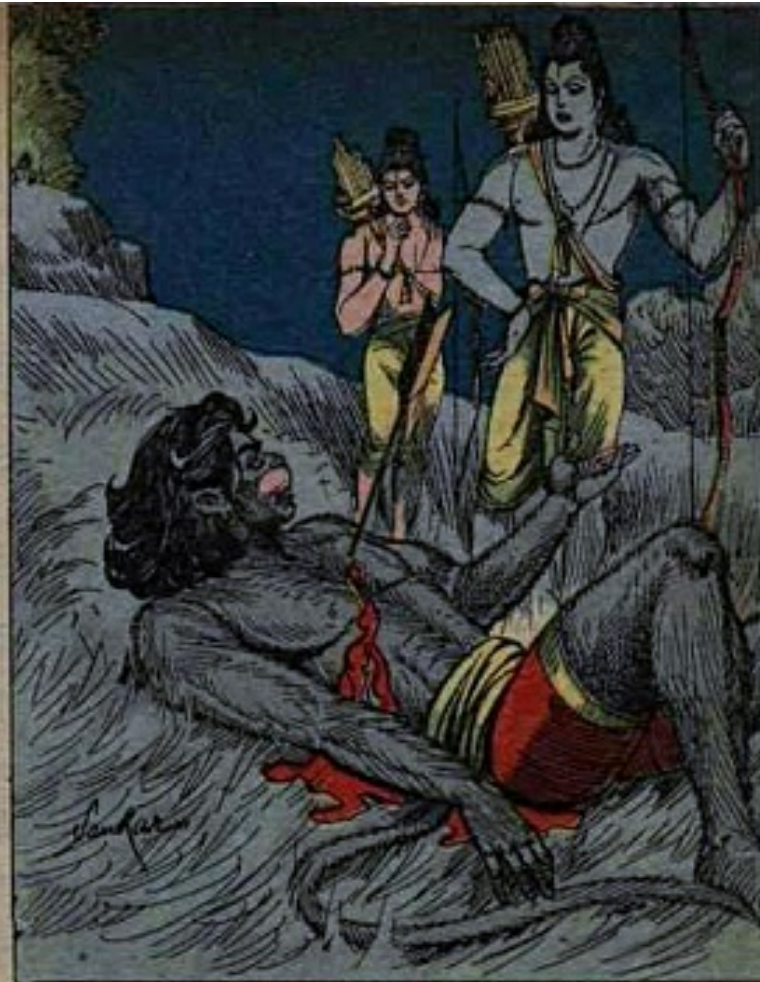
प्राणों के निकलने के थोड़ी देर पहले वाली ने रामचन्द्र से कहा—"मैं मर रहा हूं, इसकी चिंता मुझे बिलकुल नहीं है, तारा तथा रिश्तेदारों की भी मुझे चिंता नहीं है। मेरी सारी चिंता अंगद को लेकर है। वह मुझे अपने प्राणों के समान मानता है। मेरे वास्ते वह दुखी होगा। उसकी रक्षा करके उसको सुग्रीव के समान

मानिये। यह भी कि मेरी वजह से सुग्रीव तारा का अपमान न करे।"

रामचन्द्र ने वचन दिया कि ऐसा ही किया जाएगा, तब वाली बेहोश हो गया।

इस बीच तारा को वाली का समाचार मिला। वह अत्यंत दुखी हो अपने पुत्र को साथ ले किष्किधा से आई। रास्ते में कुछ वानरों ने उसको समझाया—"तारा, तुम लौट जाओ। तुम अपने पुत्र अंगद को बचाओ; राम के रूप में मृत्यु आकर वाली को ले जा रही है। नगर द्वार बंद कराकर अंगद का पट्टाभिषेक करो; वरना तुम को किष्किधा में आश्रय तक न मिलेगा; तुम्हारे शत्रु वानर आकर इस पर अधिकार कर लेंगे।"

इस पर तारा ने जवाब दिया—"मेरे पतिदेव के खोने के बाद पुत्र, राज्य और शरीर चाहे कुछ भी हो जाय, मुझे चिंता नहीं, मैं उस वाली के पास ही जाऊँगी।" यों सर, छाती पीटते, तेज़ी से भाग गई, ज़मीन पर पड़े हुए वाली को तथा उसके निकट ही खड़े हुए राम और लक्ष्मण को भी देखा; तब वाली के पास जाकर उसका आलिंगन करके रो पड़ी। तारा तथा अंगद को देखते ही सुग्रीव का दुख भी उमड़ आया।

हनुमान ने तारा को देख यों सांत्वना दी—"तारा, मरे हुए लोगों के बारे में दुख करने से कोई फ़ायदा नहीं, क्योंकि हम सब भी एक न एक दिन मरनेवाले हैं। अब तुम्हें चिंता करनी है—तुम्हारे बारे में। तुम्हारे पुत्र है। उसके योग-क्षेम का ख्याल रखते हुए उसकी ज़िंदगी को बनाओ। वाली महात्मा थे। उनको उत्तम लोक प्राप्त हो गये हैं। अंगद यदि राजा बन गया तो तुम उसकी सहायिका बनी रहो। वाली की अंत्येष्ठि क्रियाएँ करनी हैं; अंगद का राज्याभिषेक भी करना है।"

इस पर तारा ने कहा—"हे हनुमान! ये सारे काम मेरे द्वारा किये जानेवाले काम नहीं हैं। मुझे भी वाली का साथ देना है।"

अमर वाणी

दम, श्शम:, क्षमा, धर्मो,
धृति, स्सत्यम्, पराक्रम:
पार्थिवानाम् गुणा (राजन्)
दंड श्चा प्यपराधिषु ॥ ॥ १ ॥

[इंद्रियों पर नियंत्रण, चित्त की पवित्रता, क्षमा, धर्म, साहस, सत्य, पराक्रम तथा अपराधियों को दण्ड देना—ये सब राजा के गुण हैं ।]

नय श्च विनय श्चोभौ,
निग्रहानुग्रहा वपि,
राजवृत्ति रसम्कीर्णा
न नृपा: कामवृत्तय: ॥ ॥ २ ॥

[राजा लोग कभी भी नय, विनय, निग्रह एवं अनुग्रहों को अपनी इच्छा के अनुसार बदलते नहीं ।]

शासना द्वा, विमोक्षा द्वा,
स्तेन: स्तेया द्विमुच्यते,
राजा त्वशास न्पापस्य
त दवाप्नोति किल्बिषम् ॥ ॥ ३ ॥

[राजा चोर को दण्ड दे या मुक्त करे, दोनों स्थितियों में पाप दूर हो जाता है । मगर दण्ड दिये बिना चोर को मुक्त करने पर उस पाप का भागी राजा होता है ।]

राजा

Photo by P. V. Subramanyam
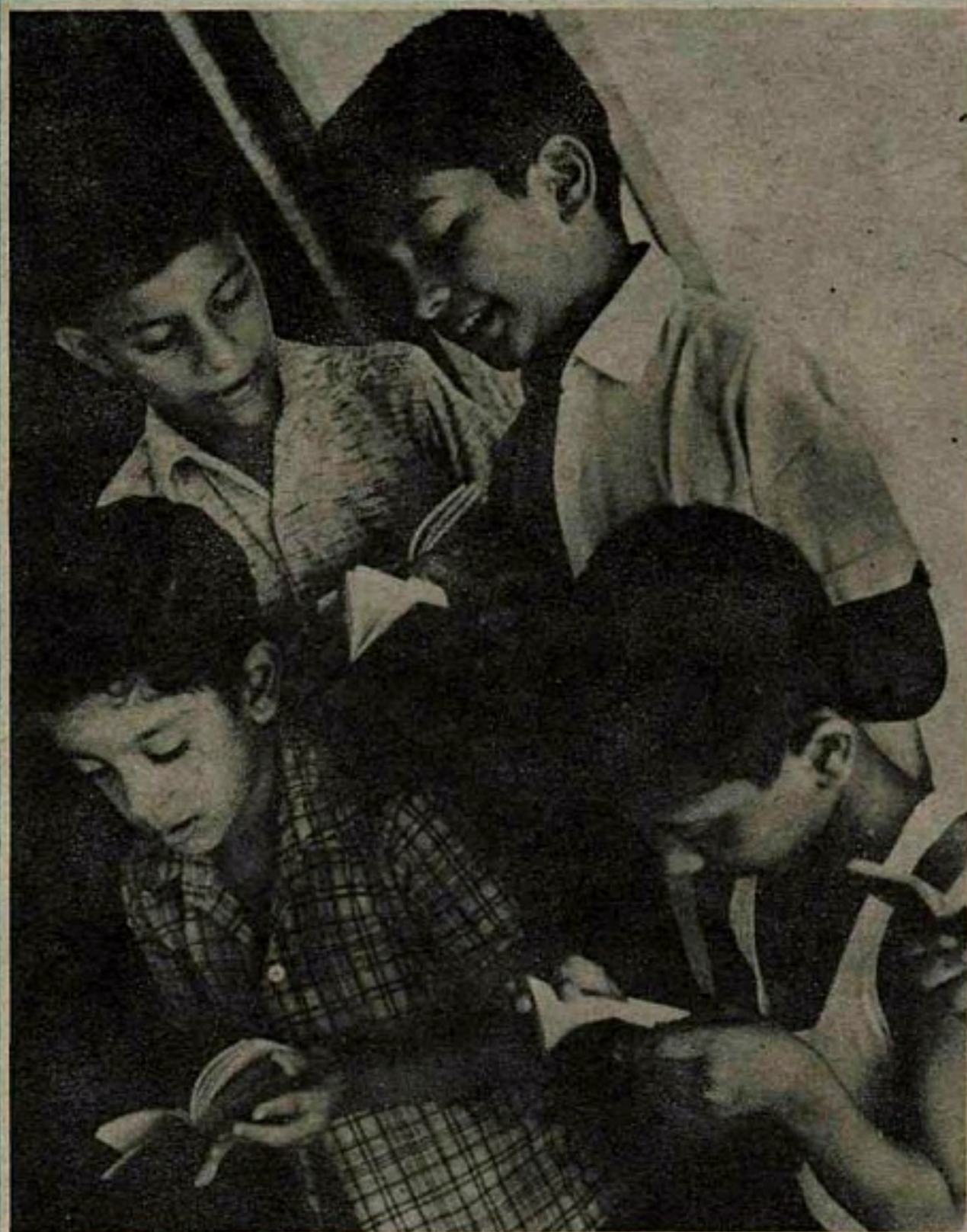
पुरस्कृत
परिचयोक्ति

नये वर्ष का यह उपहार

प्रेषक :
अजय नौटियाल

Photo by K. K. Rao
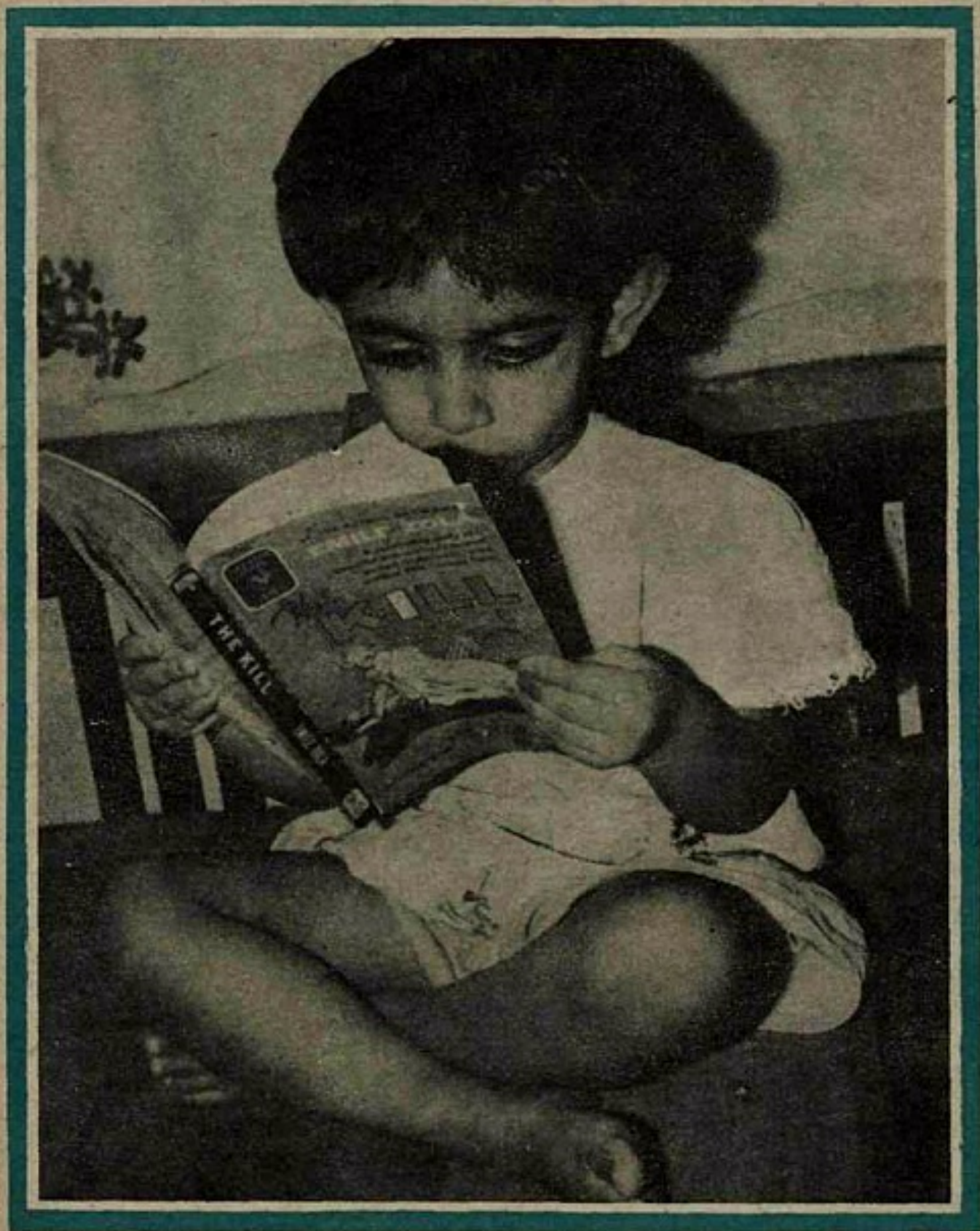
पो. गोचार,
चामोली (उ. प्र.)

इसे पढ़ने को मैं तैयार

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २०)
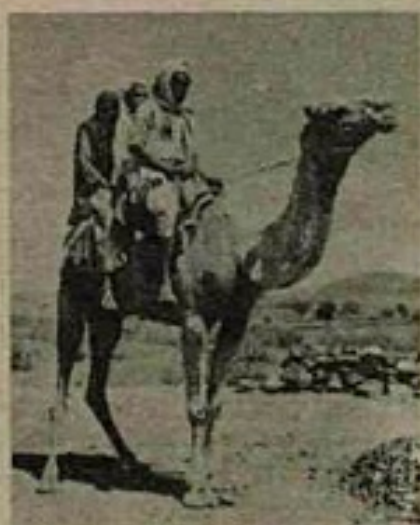
★ परिचयोक्तियाँ मार्च १० तक प्राप्त होनी चाहिए। सिर्फ़ कार्ड पर ही लिख भेजें।

★ परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबंधित हों, पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ मई के अंक में प्रकाशित की जायंगी!

चन्दामामा

इस अंक की कथा-कहानियां-हास्य-व्यंग्य

दूसरा आवरण पृष्ठ:
शिला में शिल्प

तीसरा आवरण पृष्ठ:
शिला पर शिल्प

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Chandamama Publications,

अपनी रक्षा आप...

डैडी, सुनील ने आज सवेरे मुझे मारा

तुमने वापिस क्यों नहीं मारा? अपनी रक्षा आप करना सीखो!

देखो, घूंसे से बचने के लिए या तो पीछे या बाजू हट जाओ या ऐसे झुक जाओ कि वार खाली जाये।

घूंसे को कलाई पर भी रोक सकते हो।

या उसे भुजा या कन्धे पर भी झेल सकते हो।

हाँ ऐसे। 'बॉक्सिंग' यानी अपनी रक्षा आप करने का यह तुम्हारा पहला सबक है।

बाप रे, बड़ी देर हो गयी। चलो सो जाएँ। रोहित, तुमने दाँत तो साफ़ कर लिए हैं न?

डैडी, मैं रोज़ सवेरे तो करता हूँ।

Statement about ownership of CHANDAMAMA (Hindi)
Rule 8 (Form IV), Newspapers (Central) Rules, 1956

1. *Place of Publication*	...	'CHANDAMAMA BUILDINGS' 2 & 3, Arcot Road Vadapalani, Madras-600 026
2. *Periodicity of Publication*	...	MONTHLY 1st of each calendar month
3. *Printer's Name*	...	B. V. REDDI
Nationality	...	INDIAN
Address	...	Prasad Process Private Limited 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
4. *Publisher's Name*	...	B. VISWANATHA REDDI
Nationality	...	INDIAN
Address	...	Chandamama Publications 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
5. *Editor's Name*	...	CHAKRAPANI (A. V. Subba Rao)
Nationality	...	INDIAN
Address	...	'Chandamama Buildings' 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
6. *Name & Address of individuals who own the paper*	}	Chandamama Publications PARTNERS: 1. Sri B. Nagi Reddi 2. Smt. B. Padmavathi 3. Smt. B. Bharathi 4. Sri B. N. Suresh Reddi 5. Sri B. V. Satish Reddi (Minor) 6. Sri B. V. Sanjaya Reddi (,,)

I, B. Viswanatha Reddi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

B. VISWANATHA REDDI
Signature of the Publisher

1st *March* 1975

Photo by: **SAMBHU MUKHERJEE**

DECORATION ON STONE

मित्र-भेद